बेचारे

अङ्गरेज़ों की विपता

लेखक—

बेगमात के आँसू, मोहासराए-देहली के ख़ुतूत, ग़दर देहली के अख़बार, देहली की जाँकनी, ग़ालिब का रोज़नामचा-ग़दर, बहादुरशाह का मुक़द्दमा, देहली का आख़िरी साँस, ग़दर-देहली की सुबह-शाम आदि-आदि ग़दर-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के रचयिता—

ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब

अनुवादक—

श्री० बलखण्डीदीन सेठ, बी० ए०

प्रकाशक—

नरेन्द्र पब्लिशिङ्ग हाऊस

रैन बसेरा :: देहरादून

पहिला संस्करण]   मार्च, १९३४   [मूल्य ॥)

प्रकाशक—
नरेन्द्र पब्लिशिङ्ग हाउस
रैन बसेरा :: देहरादून

मुद्रक—
श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

अंगरेजों की बिपता

विप्लव होने से लगभग एक मास पूर्व—पहली एप्रिल सन् १८५७ ई० को—इस आशय की एक विज्ञप्ति देहली की जामा मस्जिद में चिपका दी गई थी, कि ११ मई को देहली लूटी जायगी और भीषण रक्तपात होगा; किन्तु उस समय अधिकारियों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और इसे एक साधारण बात समझ कर हँसी में टाल दिया गया। उत्तर पश्चिमीय जिलों के समाचार-पत्रों ने भी इसे कोई महत्व नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण भी निश्चिन्त बैठे रहे। यहाँ तक कि ११ मई का वह भयंकर दिन आ गया और मेरठ के विप्लवकारियों का एक जत्था प्रातःकाल ७ बजे नौकाओं द्वारा दरिया को पार कर शहर में आ घुसा। इन विप्लवकारियों में कुछ सशस्त्र सवार और कुछ हिन्दोस्तानी पल्टन नम्बर २० तथा ११ के पैदल सैनिक शरीक थे।

सब से पहले इन विप्लवकारियों ने घाट के ठेकेदार को लूट लिया। इसके बाद पुल-द्वारा शहर में घुस पड़े और पुल ही पर एक फिरंगी को, जिसपर इनकी दृष्टि रास्ते में पड़ी थी, मार डाला। नदी पार करने के बाद मल्लाहों ने पुल को तोड़ दिया। सवार घोड़ों पर पार होकर दिल्ली-दर्वाजे के रास्ते से

अङ्गूरी बाग की ओर चल पड़े। यह बाग किले के नीचे था और यहाँ बड़े साहब ; अर्थात्—रेजीडेण्ट रहते थे। ये सवार उनकी हत्या करने के अभिप्राय से वहाँ गये थे। इसी बीच में कोतवाल को इस बात का समाचार मिल गया, वह भागता हुआ सिमन फ्रेज़र साहब के पास गया और उनको इस बात की सूचना दी। साहब बहादुर ने आज्ञा दी कि दफ्तर के कुल कागज़ात शहर में ले जाओ और स्वयं दो नली बंदूक भर कर विप्लवकारियों की ओर गाड़ी में बैठकर रवाना हुए ; ताकि इस उपद्रव को किसी तरह दबा सकें ; किन्तु विप्लवकारी इन्हें देखते ही इनके खून के प्यासे हो गये। बेचारे फ्रेजर साहब ने यह रङ्ग देखा, तो जान बचाने की चिन्ता करने लगे। वे गाड़ी से कूद कर समन बुर्जवाले रास्ते से किले के भीतर घुस गए और उसके दरवाजे बन्द कर लिए। इस बीच में साहब बहादुर ने दो-एक विप्लवकारियों को अपनी गोलियों का निशाना भी बनाया। समन बुर्ज से फ्रेजर साहब सीधे किले के लाहौरी दर्वाजे पर गए और उस दर्वाजे के दर्बान को आज्ञा दी कि यह दर्वाज़ा भी बन्द कर दे। इसके बाद एक विप्लवकारी ने आकर सूबेदार से कहा कि वह दर्वाज़ा खोल दे। सूबेदार ने पूछा कि तुम कौन हो ? उसने उत्तर दिया कि मैं मेरठ के रिसाले का सवार हूँ। सूबेदार यह सुनकर थोड़ी देर चुप रहा, इसके बाद पूछा—और सिपाही कहाँ हैं ? सिपाही ने उत्तर दिया कि वह सब अङ्गूरी बाग में हैं। सूबेदार ने यह सुनकर उस से कहा कि जाकर उन सब को बुला लाओ। वह सिपाही चला गया। जब वह जमा हो गए, तो सूबेदार ने दर्वाज़ा खोल दिया और सारे सिपाही क़िले में दाखि-

ल हो गए। कप्तान डगलस क़िलेदार और फ्रेजर साहब ने सूबेदार से कहा कि ऐसी खुली हुई दग़ाबाज़ी की तुमसे आशा न थी। फिर कुछ समझाना चाहा और सूबेदार से कहा कि सिपाहियों से कहो कि बन्दूकें भरलें; क्योंकि क़िले के दर्वाज़े पर हमेशा एक गारद रहा करता था और वह इन विप्लवकारियों को रोकथाम के लिए काफ़ी था; पर सूबेदार पहले ही गुमराह और इन आफ़त के पुतलों के साथ षड्यंत्र में शरीक हो चुका था। उसने इस आज्ञा को भी उपेक्षा की दृष्टि से ही नहीं देखा; बल्कि टर्राने लगा और अश्लील गाली देकर वहाँ से चले जाने को कहा—दोनों अङ्गरेजों ने जब यह रंग देखा, तो बाध्य होकर किले के भीतरी हिस्से की ओर भागे। दोनों बेचारे भागते हुए आ रहे थे कि रास्ते में विप्लवकारी-दल के सवार मिल गए। एक ने फ्रेज़र साहब पर और दूसरे ने कप्तान डगलस पर पिस्तौल से फ़ायर कर दिया। दोनों ज़ख्मी होकर दीवार के सहारे खड़े हो गए। इसके बाद एक और विप्लवकारी आया और उसने तलवार-द्वारा दोनों के सिर धड़ से जुदा कर दिये। इस दुःखपूर्ण घटना का उल्लेख एक साहब ने भिन्न प्रकार से किया है। उनका कहना है कि जब फ्रेज़र साहब गोली खाकर ज़ख्मी हुए, तो उसी हालत में उन्होंने दो विप्लवकारियों को मार डाला और गाड़ी पर सवार होकर भागे। यद्यपि ज़ख्म भारी लगा था, और घाव से खून बह रहा था; पर गाड़ी चलाने की शक्ति उनमें तब भी थी, अथवा यों कहिए कि जीवन के भय के कारण पौरुष अपना काम करा रहा था। इस समय जब कि बेचारे ज़ख्मों से चूर और पीड़ा से बिकल भागे जा रहे

थे, एक विप्लवकारी आया और उसने साहब के साईस को तलवार देकर कहा कि तू इसको मार डाल ! चाण्डाल साईस ने तलवार लेकर साहब के ऐसा हाथ मारा कि साहब बहादुर का सिर धड़ से अलग हो गया। फिर कप्तान डगलस को भी मार डाला। इसके बाद विप्लवकारी दीवाने-आम की ओर गए, वहाँ दो नवयुवती मिसें थीं, उनको भी इन निष्ठुरों ने न छोड़ा और बन्दूक का निशाना बना दिया। वहाँ से निकल कर सीधे दरियागंज की ओर मुँह किया और यहाँ आकर तमाम मकानों में आग लगा दी। ये मकानात अधिकतर अङ्गरेजों के थे। इसी बीच में विप्लव-कारियों की एक और रेजिमेण्ट शहर में घुस आई और उन्होंने आते ही शहर के बच्चों और गुण्डों से कहा कि तुमलोग शहर को खूब लूटो। इस सामान गनीमत में हाथ लगाना हमारे लिए हराम है। जो विप्लवकारी दरियागंज को जला रहे थे, उन्होंने वहाँ पाँच अङ्गरेजों और दो मेमों को मार डाला। जो शेष ईसाई थे, उन्होंने भाग कर राजा किशनगढ़ की कोठी में जान बचाई। जब सारा दरियागञ्ज जल कर भस्म हो गया, तो वहाँ से विप्लवकारी बैङ्क की कोठी पर गए। उसे भी आग लगा कर जला डाला और पाँच फिरङ्गियों को जान से मार डाला। फिर वहाँ से वे कोतवाली गए और बदमाशों से शहर लूटने को कह दिया। कोतवाल भयभीत होकर कोतवाली से भाग गया और गरीबों की रक्षा का उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। कोतवाली से सिकत्तर साहब की कोठी पर पहुँचे ; पर उसमें आग नहीं लगाई। लेकिन, वहाँ गिर्जा और गिर्जा के आस-पास जितने भी मकान थे, उन्होंने सब में आग लगा दी और जला कर भस्म

वशेष कर दिया और जितने भी फिरङ्गी तथा मेमें मिलीं, उन्हें बाल-बच्चों सहित मार डाला। इसके बाद इन्हीं विप्लव-कारियों में से पाँच सवार छावनी पहुँचे। उनके पहुँचते ही वहाँ जितने भी सिपाही थे, उन्होंने अपने अफ़सरों के बँगलों को जलाना आरम्भ कर दिया और जो भी फिरङ्गी दिखाई पड़ा, वह कठोरता-पूर्वक मौत के घाट उतार दिया गया। बाक़ी सवार मैगज़ीन की ओर गए; पर जैसे ही क़रीब पहुँचे, वैसे ही वे सब सिपाही तथा शहर के लगभग एक हज़ार व्यक्ति मैगज़ीन के फटने से उड़ गए। परमात्मा जाने मैगज़ीन में आग किस तरह लग गई।

अब यहाँ छावनी में जितने सिपाही थे, वे दो हिस्सों में बँट गए थे। पल्टनें तो विप्लवकारियों के साथ मिलकर शहर को लूटने में जुट पड़ीं और दो रेजिमेन्टें लाल डिग्गी के समीप किले के सामने ठहरीं। इनमें से एक गारद राजा किशनगढ़ की कोठी पर गया; क्योंकि उसने अङ्गरेज़ों को शरण दी थी। उस कोठी में ३२ स्त्री-पुरुष और कुछ बच्चे छिपे हुए थे। उस गारद ने वहाँ पहुँचते ही कोठी में आग लगा दी, जो एक रात और दिन बराबर जलती रही। दूसरे दिन वे विप्लवकारी मैगज़ीन में से दो तोपें उठा लाए और तमाम दिन उसपर गोलाबारी करते रहे; पर चूँकि छिपे हुए कुल अङ्गरेज़ तहख़ाने में चले गए थे; इस कारण सब-के-सब सुरक्षित रहे और बच गए—उन्हें किसी प्रकार की हानि न पहुँची। इसके बाद विप्लवकारियों ने शहर को लूटना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि सिकत्तर साहब की कोठी को भी शहर के गुण्डों ने खूब लूटा—यद्यपि मेरठ के विप्लवका-रियों ने अबतक इस लूट में भाग नहीं लिया था।

१३ तारीख़ को विप्लवकारियों ने फिर दोबारा उन अङ्गरेज़ों पर हमला किया, जो राजा किशनगढ़ की कोठी में छिपे हुए थे; लेकिन इस बार अङ्गरेज़ों ने भी कोठी के भीतर से गोलियाँ चलाईं और कुछ विप्लवकारियों को मार डाला। मगर गरीबों के पास जब गोली और बारूद न रही, तो चार अङ्गरेज़ों को छोड़ कर शेष सब बाहर निकल आए और लड़ते रहे। इसी बीच में शाही उत्तराधिकारी (वलीअहद) भी वहाँ पहुँच गए और उनसे कहा कि इन अङ्गरेज़ों को हमें दे दो, हम इन्हें हिरासत में सुरक्षित रक्खेंगे; पर विप्लवकारियों ने इनकी एक न सुनी और सभी को तलवार के घाट उतार डाला।

मि० जॉर्ज (सिकत्तर साहब) अपनी जान बचाने के लिए बाल-बच्चों सहित क़िले में छिपे हुए थे। गुप्तचरों ने इस बात की सूचना दे दी। विप्लवकारी इन्हें क़िले से कोतवाली में पकड़ लाए और यहाँ उन्हें बहुत अमानुषिक ढंग से ज़लील करके मार डाला गया और हस्पताल के हिन्दोस्तानी और अङ्गरेज़ डॉक्टरों को हस्पताल तथा जेलखाने के भीतर मार डाला। इन बेचारों का शव बिना क्रिया-कर्म तथा कफ़न के तीन दिन तक इसी तरह पड़ा रहा। अन्त में चौथे दिन स्वयं विप्लवकारियों ने उन्हें नदी में डलवा दिया!

बादशाह से वेतन की माँग

अब विप्लवकारियों ने बादशाह को इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र दिया कि या तो दो मास का वेतन हमें दिलवा दिया जाय अथवा हमारे लिए प्रति दिन के हिसाब से खाने-पीने का

सामान दिलवाए जाने का प्रबन्ध कर दिया जाय। बादशाह ने शहर के सब महाजनों को बुलाकर आज्ञा दे दी कि यदि वे सिपाहियों की मांगें पूरी न करेंगे, तो सब अपनी जानों से हाथ धो बैठेंगे (बादशाह चूंकि मजबूर थे; इसलिए सम्भवतः आम शहर की बर्बादी और रक्तपात को बचाने के लिए ही उन्होंने ऐसा हुक्म दिया होगा।) महाजनों ने बादशाह की सेवा में निवेदन किया कि इन्हें बीस रोज़ तक केवल दाल और रोटी खिला सकते हैं, इससे अधिक कुछ करना हमारी शक्ति के परे है; परन्तु विप्लवकारियों ने इसे स्वीकार न किया। उनका कहना था कि हम तो मरने-मारने पर कमर बाँधे बैठे हैं। चन्द रोज़ जो जीवन के शेष हैं, उनमें भी केवल दाल और रोटी खाएँ, यह हमसे न होगा। अन्त में बादशाह ने सारी बातें सुनकर उनके लिए चार आने रोज़ देना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद विप्लवकारियों ने शहर की नाकाबन्दी कर दी और प्रत्येक दर्वाजे पर दो-दो तोपें चढ़ा दीं और एक हजार मन बारूद छावनी की मैगज़ीन से उठा लाए और जितना भी गोला बारूद मैगज़ीन में शेष था, सब पर अपना अधिकार जमा लिया। इस उपद्रव और झगड़े-फ़साद के कारण शहर में रसद आना बन्द हो गया और सब चीज़ें महँगी हो गईं। आटा ३ सेर, गेहूँ ८ सेर और घी १॥ सेर का बिकने लगा। सारांश यह कि तमाम चीज़ें महँगी होगईं। देहली के आस-पास के जितने देहाती थे, सब उठ खड़े हुए और उन्होंने लूट मार शुरू कर दी। बादशाह ने झगड़ा-फ़साद से त्राण पाने के लिए (सम्भवतः आतंक जमाने के अभिप्राय से, गूजरों के चार-पाँच

गावों को जलवा दिया ; पर यह आग बुझी नहीं। सिकत्तर साहब की यह कोठी बिलासपूर में थी, वह भी लूट ली गई।

विप्लवकारियों ने जब देहली को अच्छी तरह लूट लिया, तो दो सौ सवार गुड़गाँव की ओर गए, और वहाँ भी झगड़ा, फसाद, लूट-खसोट तथा अग्निकाण्ड का बाज़ार गर्म कर दिया और सरकारी ख़ज़ाने को, जिसमें सात लाख चौरासी हज़ार रुपए थे, लूट कर देहली वापस आ गए। इस समय विप्लवकारियों के पास देहली तथा गुड़गाँव के ख़जानों के २१ लाख ८४ हज़ार रुपए नक़द मौजूद थे, जो सिपाहियों के ख़र्च के अभिप्राय से शाही क़िले में रक्खे गए।

इस समय देहली में तीन रेजिमेन्टें मौजूद थीं, एक तो मेरठ की और दो ख़ास देहली के सशस्त्र सवारों की। शेष उपद्रवी सिपाहियों की फ़ौज अलीगढ़ और आगरे की ओर रवाना हो गई। शहर में सब से बड़ा और प्रसिद्ध व्यापारी लक्ष्मणचन्द था ; पर केवल उसी की कोठी लूट-मार से बची हुई थी, जिसका कारण यह था कि यह विप्लवकारियों को नित्य ही भोज दिया करता था।

आप बीती

पहली कहानी

हिन्दोस्तानी पैदलों की ३० नम्बर के रेजिमेंन्ट का एक अफ़सर अपनी मुसीबतों का हाल इस तरह बयान करता है—

११ तारीख़ को क़रीब १०॥ बजे सुबह मेरा नौकर भागता हुआ मेरे कमरे में आया और नेहायत घबराहट से कहने लगा कि शहर में बहुत खलबली मच रही है और लोग कह रहे हैं कि मेरठ के तमाम भारतीय सिपाही देहली पर अधिकार करने के लिए बढ़े चले आ रहे हैं। इस फ़साद की जो सबसे पहली ख़बर मैंने सुनी, वह यही थी। चूँकि मेरा बँगला छावनी ही में था; इसलिए मैं यह समाचार सुनते ही ३८ नम्बर की हिन्दुस्तानी रेजिमेन्ट के एडजूटेण्ट इन्साइन कमियर साहब के बँगले की तरफ पैदल चल दिया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि कमाण्डिङ्ग अफ़सर और कर्नल न्यूट साहब—दोनो मौजूद हैं और उन्होंने भी मेरे समाचार का समर्थन किया और कहा कि हिन्दुस्तानी पैदलों की एक रेजिमेण्ट नम्बर ४५ तोपों सहित शहर में भेजी गई है और नम्बर ३८ व ७४ रेजिमेण्ट की दो कम्पनियाँ पहाड़ी पर, जो शहर और छावनी के बीचमें है, पड़ाव डालेंगी। इन रेजिमेण्टों के शेष सिपाही किसी दूसरे स्थान पर न भेजे जायँगे; पर अपनी छावनी में उन्हें हर समय हथियारों से लैस और तैयार रहना चाहिए। जब मैं कमाण्डिङ्ग अफ़सर के बँगले से वापस हुआ, तो

रास्ते में मुझे निकोल साहब मिले; पर इनसे केवल इतना ही पता चला कि मेरठ के विप्लवकारी सवारों में से करीब डेढ़ सौ सवारों ने किश्तियों के पुल पर अधिकार कर लिया है और मेरठ से आते हुए जो अङ्गरेज उन्हें मिलते हैं, उसे मार डालते हैं।

जब मैं अपने बँगले पर पहुँच गया, तो थोड़ी देर के बाद वे दोनों तोपें मेरे बंगले के बराबर से शहर की तरफ जाती हुई नजर आईं, तो मुझे इतमीनान हुआ कि उपद्रवकारियों की शरारतों और फिसाद को रोकने के लिए रेजिमेण्ट नम्बर ५४ और ये दोनों तोपें काफी होंगी और इसके बाद जो घटनाएँ घटित हुईं, उनकी तो स्वप्न में भी मुझे आशा न थी। फिर भी सावधानी के लिए मैंने अपना पचनला तमञ्चा भर लिया और गाड़ी के घोड़े तैयार रखने की आज्ञा दी।

दोपहर के १२ बजे के लगभग मेरे नौकरों ने मुझे समाचार दिया कि दरियागंज की छावनी जल रही है और मेरी रेजिमेण्ट के साहब एजीटन और कमाण्डिङ्ग अफसर छावनी की ओर गए हैं। यह समाचार सुनकर मैं भी सवार होकर गया और देखा कि सिपाहियों को युद्ध सामग्री बाँटी जा रही है। वहाँ से मैं अपनी कम्पनी में गया और सिपाहियों से बात-चीत करने लगा। परोक्ष रूप से वे सब नेकचलन मालूम होते थे और इस फ़िसाद से सबने अनभिज्ञता प्रकट की; बल्कि बहुत से सिपाही कमर-बन्दी से असन्तुष्ट प्रतीत होते और कहते थे कि हम अभी इस शहर की तैनाती से वापस आए हैं, अभी अच्छी तरह रोटी-पानी भी नहीं कर पाए, कि फिर उन्हें तैयार होने की आज्ञा दी जाती है। इसके उत्तर में मैंने उनसे कहा कि सम्भवतः थोड़ी

देर में यह झगड़ा शान्त हो जायगा, फिर आराम करना; क्योंकि एक रेजिमेण्ट और दो तोपें उपद्रवकारियों को ठण्ढा करने के लिए भेजी जा चुकी हैं। मैंने उनसे यह भी कहा, कि मुझे विश्वास है कि यदि आवश्यकता पड़ी, तो तुम सब लड़ोगे और नमक का हक़ अदा करोगे, जिसके जवाब में सिपाहियों ने कहा कि हमने सरकार कम्पनी का नमक खाया है और हर तरह से लड़ने मरने को तैयार हैं। इनमें से एक हवलदार अधिक हो-हल्ला मचा रहा था; पर बड़ी सावधानी से। यह नहीं कहता था कि हम उपद्रवकारियों से न लड़ेंगे; बल्कि यह कहता था कि यदि कोई राजा बाबू ग़नीम (शत्रु) आवेगा, तो उससे लड़ेंगे।

थोड़ी देरी के पश्चात् दोनों कम्पनियाँ, जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, पहाड़ी की ओर रवाना हुईं कि वहाँ पहुँच कर डेरा डालें। बिदा होते समय दोनों कम्पनियों के सिपाहियों ने बहुत हो-हल्ला मचाया, जिससे प्रकट होता था कि इन्हें बहुत हर्ष हुआ है। इनके किसी रङ्ग ढंग से यह सन्देह न होता था कि वह भी क्रान्तिकारी विचार रखते हैं। मैं सैनिकों के साथ बात-चीत करही रहा था, जब कि यह समाचार मिला कि ५४ नम्बर की रेजिमेन्ट ने शहर में प्रवेश करते ही लड़ने से इन्कार कर दिया और अपने अफ़सरों को तीसरे रिसाले के सवारों से कटवा दिया और विप्लवकारियों का ज़रा भी मुक़ाबला न किया। जब यहाँ तक नौबत पहुँच गई और परिस्थिति इतनी भयावह हो गई, तो सिपाहियों को तैयार होने की आज्ञा दे दी गई, कारतूस बाँटे गए, बाजे वालों को भी बन्दूकें और लड़ाई का अन्य सामान दिया गया। सबों ने आज्ञा का पालन किया और बन्दूकें भर कर

लड़ाई के लिए तैयार हुए। यहाँ यह हो ही रहा था कि ५४ नम्बर की रेजिमेण्ट के कर्नल रेली डोली में आए। ज़ख़्मों से उनका शरीर लहू-लुहान हो रहा था। मैंने स्वयं अपने कानों से उन्हें यह कहते हुए सुना कि मुझे स्वयं मेरे ही सिपाहियों ने संगीनें मारी हैं। इसके बाद फ़ौजी डॉक्टर साहब की ज़बानी जो समाचार मिला, वह और भी भीषण और रोमाञ्चकारी था। उन्होंने सिपाहियों की उद्दण्डता और उनके द्वारा अपने अफ़सरों की निर्मम हत्याओं का विस्तृत समाचार बतलाया, जिससे प्रतीत हुआ कि ५४ नम्बर की रेजिमेन्ट उपद्रवकारियों के दल में मिल गई। जब परिस्थिति इतनी जटिल हो गई, तो अफ़सरों के परस्पर परामर्श द्वारा यह निश्चय किया गया कि जितनी भी तोपें और फ़ौज शेष है, वह सब पहाड़ी पर जाकर डेरा डालें। केवल ७४ नम्बर की रेजिमेण्ट काश्मीरी दर्वाज़ा भेजी गई; ताकि वहाँ पर जो गारद है, यह उसकी सहायता करे। शेष कुल फ़ौज ने पहाड़ी पर जाकर डेरा डाल दिया। दोनों तोपें इस तरह लगाई गईं, कि इनकी मार उस रास्ते पर पड़े, जो शहर को जाता था। ३८ नम्बर रेजिमेण्ट के जो-जो मँजे हुए सिपाही थे, वह इस बुर्ज के सीधे हाथ की ओर एकत्र कर दिये गए। जितनी फिरंगी स्त्रियाँ और उनके बच्चे वहाँ थे, सब आकर बुर्ज के भीतर जमा हो गए। और थोड़े समय के बाद शहर के बहुत से नागरिक भी वहाँ आ गए। अब चारों ओर से उन अँगरेज़ों की हत्याओं के समाचार आने लगे, जो शहर में रहते थे। यह भी पता चला कि जितनी फ़ौज मैगज़ीन तथा अन्य स्थानों में नियुक्त थी, उन सब ने भी सरकार के काम से इन्कार कर दिया; अर्थात्—लड़ने से मुँह मोड़ लिया।

जब फ़ौज के इस विश्वासघात और खुले विद्रोह का विश्वास हो गया और चारों ओर भीषण रक्तपात और झगड़ों का बाज़ार गर्म होने लगा, तो ब्रिगेडियर साहब ने साँड़नी-सवार द्वारा मेरठ में अधिकारियों के पास पत्र भेजा और क़रीब दस बजे तार द्वारा यह समाचार अम्बाला भेजने की उन्होंने आज्ञा दी। इसके बाद इन साहब ने समस्त सैनिकों को एकत्र कर के उनसे पूछा कि आखिर तुम्हें क्या शिकायत है और तुम क्या चाहते हो ? तो कुछ सिपाहियों ने कारतूस पर आपत्ति की। इसपर इन साहब नें उन्हें समझाया और इस बात का विश्वास दिलाया कि सरकार का यह कदापि अभिप्राय नहीं है कि वह तुम्हारे धर्म से तुम्हें च्युत करे और फ़ौज को ऐसे कारतूस कदापि न दिये जायँगे, जिनसे किसी के धर्म पर आघात हो। बातों का सिलसिला जारी था और साहब बराबर फ़ौज को समझा रहे थे ; पर सैनिकों की आँखें बदली हुई थीं और वह अपना रोष प्रकट कर रही थीं। इनकी ओर से विश्वास नहीं होता था।

पहाड़ी के चारों ओर फ़ौज जमा थी। मैं भी उनके समीप गया और बैठकर उनसे बातें करने लगा। सिपाहियों ने जब यह समाचार सुना कि ५४ नम्बर की रेजिमेन्ट ने अपने तमाम अफ़सरों को अपने ही हाथों से मार डाला, तो उन्होंने इसपर बहुत खेद प्रकट किया और कहा कि उन्हें यह बात बहुत अनुचित प्रतीत हुई है। तब मैंने उनसे पूछा कि तुम हमारा साथ दोगे या मुझे और मेरे बाल-बच्चों को ; बल्कि समस्त अङ्गरेजों को मारे जाते हुए देखोगे ? इसके उत्तर में प्रायः समस्त सिपाहियों ने एक स्वर में कहा कि जहाँ आपका पसीना गिरेगा, वहाँ

हम अपना रक्त बहाने को तैयार हैं और तबतक मैं वहाँ बैठा रहा, वे बहुत अधिक सम्मान-पूर्वक मुझ से व्यवहार करते रहे।

पहाड़ी चूँकि ऊँचे स्थान पर अवस्थित थी ; इसलिए हम शहर को अच्छी तरह देख सकते थे। अब शहर में कई जगह आग की लपट दिखाई दे रही थी। पर परोक्ष रूप से ये सारे स्थान अङ्गरेजों के मालूम होते थे। इसी बीच में मैगज़ीन उड़ी, जिसको देखकर समस्त सिपाही अपने-अपने शस्त्र लेकर तथा हो-हल्ला और अश्लील ढङ्ग से इशारा करते हुए दौड़ पड़े। इस समय बड़ी कठिनाई से इन्हें रोका। मैं उस समय अफ़सरों के साथ फ़ौज के बीच में था। उस समय तक मैंने कोई सन्देह-युक्त वाक्य इनकी ज़बान से नहीं सुना था ; केवल एक सैनिक ने इतना कहा कि 'अब तुम्हारा नमक पानी नहीं खाया जाता'। मैगज़ीन उड़ने से पहले एक गाड़ी शहर से आई, जिसमें कप्तान स्मिथ, कप्तान ब्रू, लेफ्टनेन्ट एडवर्ड तथा लेफ्टनेन्ट वाबरफ़ील्ड की लाशें थीं। ये सब ५४ नम्बर की रेजिमेन्ट के अफ़सर थे। इन लाशों पर मेमों के कपड़े पड़े हुए थे ; जो इनकी करुणा पूर्ण विवशता के परिचायक थे।

ब्रिगेडियर साहब ने वे दोनों तोपें, जो शहर में रवाना की गई थीं, वापस मँगाईं, पर वापसी के समय इन सिपाहियों ने, जो तोपों के साथ थे, शरारतें शुरू कीं और पहाड़ी पर न आकर—जहाँ दूसरी फ़ौजें पड़ी हुई थीं—उन्होंने सीधे छावनी का रास्ता लिया। छावनी के रास्ते में कप्तान टेलर वाले जत्थे के थोड़े से सिपाही मिले, जिन्होंने इन कप्तान साहब को छोड़ दिया था। उन्होंने फ़ौरन तोपों पर अधिकार कर लिया और कप्तान आरमैन

कमानियर और सार्जेन्ट को, जो तोपों के साथ थे, लड़-भिड़ कर भगा दिया। ये दोनों सज्जन कठिनता-पूर्वक गोलियां की वर्षा से जान बचा कर पहाड़ी के बुर्ज में आए। मेरी समझ से उन कुल अङ्गरेजों में से, जो फौज के साथ शहर में गए थे, यही दो सज्जन थे, जो यहाँ जीवित पहुँच पाए थे।

उपद्रवकारी सिपाही तोपें छीन कर शहर की ओर जा रहे थे। चूँकि पहाड़ी पर से सारा दृश्य दिखाई पड़ता था; इसलिए कप्तान डीटिस्टर ने जो तोपों को शहर की ओर जाते देखा, तो वे घोड़े पर सवार होकर इस अभिप्राय से गए, कि उन्हें पहाड़ी पर वापस ले आवें; पर उपद्रवकारी सिपाहियों ने जो उन्हें आते हुए देखा, तो गोलियों की वर्षा कर दी। कप्तान साहब का घोड़ा जख़मी हुआ; पर परमात्मा की कृपा से साहब बच गए।

उपद्रवकारियों का जत्था जब शहर के समीप पहुँचा, तो यकायक उनकी दृष्टि डिप्टी कलक्टर करम्भरा साहब पर पड़ गई और उनपर भी गोलियों की वर्षा शुरू कर दी गई; पर उन्होंने भाग कर अपनी जान बचाई।

धीरे-धीरे दिन भर में युद्ध की बहुत-सी सामग्री बुर्ज पर जमा हो गई थी और हमें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि यदि तोपखाना बिगड़ न गया और बराबर काम देता रहा, तो जब तक मेरठ से सहायता न पहुँचे, हम उन समस्त अङ्गरेज, सार्जेन्ट और अन्य ईसाइयों की भरपूर रक्षा कर सकते हैं, जो बुर्ज में थे; पर यह पता नहीं था कि हमारा दुर्भाग्य मेरठ में क्या गुल खिला रहा है!

देहली से बिदाई

जब चारों ओर से निराशा हुई और कोई अवलम्ब शेष न रह गया, तो समस्त फ़ौजी अधिकारियों के परामर्श द्वारा यह निश्चय किया गया कि हमें मेरठ चलना चाहिए; अतएव कुल मेमें, साहब तथा वे लोग, जो लड़ने के योग्य न थे, सब को गाड़ियों में सवार कराकर वज़ीराबाद के घाट से, जो छावनी के समीप था, जमना पार कराके उन्हें रवाना कर दिया गया। गाड़ियों तथा दोनों तोपों के लेकर कप्तान डीटिस्टर साहब आगे बढ़े और पैदल फ़ौज उनके पीछे चली। जो भी हिन्दोस्तानी सिपाही साथ थे, वे सब-के-सब मानों बेगार की तरह धीरे-धीरे चल रहे थे।

जब पहाड़ी से आए तो, हमने देखा कि गाड़ियाँ और तोपें करनाल के रास्ते पर जा रही हैं और वज़ीराबाद के रास्ते को छोड़ दिया है। चूँकि मेरा घोड़ा मेरे साथ न था; इसलिए मैं सिपाहियों के साथ पैदल चल रहा था, मेरे अतिरिक्त बहुत से अफ़सर भी मेरे साथ पैदल थे। जब हम अपनी लाइन के समीप पहुँचे, तो कुल सिपाही स्वेच्छापूर्वक लाइन में चले गए। चूँकि मेरा बँगला भी समीप था; इसलिए मैं भी वहाँ गया और घोड़े को तैयार पाकर उसपर सवार हो लाइन में आया और सिपाहियों से पूछा कि क्या वे मेरे साथ चलना पसन्द करेंगे। परन्तु, सिपाहियों ने कोई जवाब न दिया। देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो मेरी बातें उन्हें ज़हर की तरह लग रही थीं। इस समय कुछ सिपाही छोटी-छोटी टुकड़ियों में अलग-अलग बैठे थे। केवल एक सिपाही बदचलन मालूम होता था, जिसने मुझे बहुत कटु और बेहूदा जवाब दिया।

इसके बाद मैं करनाल की ओर चला, ताकि गाड़ियों से जा मिलूँ; अतएव थोड़ी दूर जाकर वे दोनों तोपें, जो गाड़ी के साथ थीं, मुझे देहली की ओर वापस होती हुई मिलीं। वापस इस-लिए आ रही थीं कि गोलन्दाज़ों ने करनाल जाने से इनकार कर दिया था।

मुझे रास्ते में बहुत से घायल अफ़सर मिले, जो भयभीत होकर करनाल को ओर भागे जा रहे थे। मैंने उन्हें टूटे-फूटे शब्दों में केवल यह कहते हुए सुना कि "अब कुछ बाक़ी नहीं रहा और किसी तरह कोई सुरक्षित स्थान ढूँढ़ना चाहिए।"

दूसरी कहानी

जब देहली के भीतर उपद्रवकारियों के घुस आने तथा अङ्गरेज़ों की हत्याएँ करने, इमारतें जलाने और ढाने आदि के समाचार छावनी में पहुँचे, तो फ़ौजी अफ़सरों ने कुल फ़ौज को तैयार होने की आज्ञा दी। सबसे पहले ५४ नम्बर की रेजिमेन्ट हिन्दोस्तानी पैदलों की तैयार हुई ; क्योंकि यही शहर के अफ़सरों के समीप थी। इस रेजिमेन्ट में से कर्नल रेली के अधीन छ कम्पनियाँ उपद्रवकारियों को रोकने के लिए काश्मीरी दर्वाज़ा गईं और दो कम्पनियाँ मेजर टिपरेन्स के अधीन तोपों के साथ जाने के लिए खड़ी रहीं। कर्नल रेली चूँकि उपद्रव के वास्तविक कारणों से अनभिज्ञ थे और इसे केवल बाजारी झगड़ा-मात्र समझते थे ; इसलिए वे अपने सिपाहियों को ख़ाली बन्दूकों के साथ ले गए थे। उनका अनुमान था कि सङ्गीनों-द्वारा वे इस बाज़ारू उपद्रव को शान्त कर सकेंगे ; पर यह फ़ौज जब शहर के समीप पहुँची, तो एकाएक कुछ उपद्रवकारी सवार उन्हें दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही अफ़सरों पर आक्रमण कर दिया और सिपाहियों से बोले कि हमें तुमसे न तो कुछ कहना है और न हम तुम्हें हानि ही पहुँचाना चाहते हैं। चूँकि बेचारे अफ़सरों को इस उपद्रव की भीषणता का ज्ञान न था और वह इसे इतना जटिल न समझते थे ;

इसलिए वे सब फ़ौज के आगे थे। अतएव, उपद्रवकारियों ने सर्व-प्रथम अफ़सरों पर ही आक्रमण किया और गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। कर्नल रेली को पहले तो गोली लगी, फिर उपद्रव-कारियों ने उन्हें तलवारों-द्वारा चूर-चूर कर दिया। कर्नल साहब के अतिरिक्त दो-तीन अन्य अफ़सर भी गोलियों से घायल हुए। अफ़सरों ने सिपाहियों से जीवन-रक्षा के लिए बहुत अनुनय-विनय की; पर सब व्यर्थ सिद्ध हुई। फ़ौज ने एक न सुनी, न बन्दूकें भरीं और न उपद्रवकारियों का सामना करने का प्रयत्न किया। इसके विपरीत कुछ विश्वासघाती तथा दगाबाज़ सिपाहियों ने उल्टा कर्नल रेली को सङ्गीनों से आहत किया।

इस कोलाहल में कप्तान डम्बलिस, जो एक सप्ताह के लिए शहर में नियुक्त किए गए थे, पहुँच गए। उन्होंने अपने गारद को फ़ायर करने की आज्ञा दी; पर दुर्भाग्यवश इन बदज़ातों ने भी साफ़ इन्कार कर दिया। यद्यपि साहब बहादुर ने बहुत कुछ समझाया, अनुनय-विनय की, उन्हें उपदेश किए; पर इन सारी बातों का उनपर कोई प्रभाव न पड़ा। वे अश्लील इशारे करने और व्यंग-वर्षा करने लगे। जब साहब बहादुर ने बहुत नम्रता-पूर्वक इन सब बातों का कारण पूछा, तो उत्पाती ढंग से वे कहने लगे कि साहब, हम इन लोगों के लिए कुछ नहीं कर सकते, जिन्होंने हमारे धर्म पर आघात करने का विचार किया था और चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मच्युत हो जायँ। सारांश यह कि इसी प्रकार के ऊटपटाँग अभियोग सरकार पर लगाते रहे और अन्त में कहने लगे कि अब हम इसका बदला लेंगे। इस बीच में पाँचों अफ़सर, जिनकी चर्चा ऊपर आ चुकी

है, मारे गए, कई ज़ख़्मी हुए, एक सिपाही भी ज़ख़्मी हुआ।

जब उपद्रवकारियों और बाग़ी सिपाहियों ने देखा कि सरकारी फ़ौज ने इनका मुकाबला नहीं किया और अपने अफ़सरों की आज्ञा की उपेक्षा करके लड़ने से इन्कार कर दिया, तो वे काश्मीर दर्वाज़े की ओर चले—जहाँ एक छोटा-सा मोर्चा बना हुआ था, जिसमें गारद रहा करता था—कि वहाँ पहुँच कर उसे भी अपने अधिकार में करलें; किन्तु सौभाग्य से लेफ़्टेनेन्ट विल्सन के अधीन नम्बर ४४ रेजिमेंट की दो कम्पनियाँ और एक तोप खाना वहाँ पहुँच गया जिसके कारण बदमाश उपद्रवकारी फिर शहर की ओर लौट आए।

इस दग़ाबाज़ी और विश्वासघात की ख़बर करीब ११ बजे छावनी में पहुँची, जिसके सुनते ही नम्बर ७४ रेजिमेन्ट के हिन्दोस्तानी सिपाहियों को वहाँ एकत्र किया गया, तो उसमें केवल डेढ़ सौ आदमी उपस्थित थे, शेष व्यक्तियों की नियुक्ति पहले ही विभिन्न स्थानों पर हो चुकी थी। इन १५० सैनिकों को दो तोपों सहित सहायता के अभिप्राय से मेजर ऐबट के अधीन शहर की ओर रवाना किया गया।

इन सिपाहियों की नमकहरामी और विश्वासघात का एक और नमूना देखिए, जो कितना लज्जापूर्ण है। जब सिपाहियों के विश्वासघात का पता चला, तो ३९ नम्बर की रेजिमेन्ट का शेष हिस्सा और ५४ नम्बर की रेजिमेंट के सिपाही परेड पर बुलाए गए। ब्रिगेडियर साहब ने प्रत्येक कमांडिंग अफ़सर से कहा कि वे अपने-अपने सिपाहियों का वास्तविक अभिप्राय और उनके विचारों का इस प्रकार पता लगाएँ कि उन्हें बुलाकर स्वेच्छा से

स्वयंसेवक बनने के लिए कहा जाय। यदि वे स्वयं प्रार्थना-पत्र देकर फ़ौज में भर्ती हों, तो समझना चाहिए कि वे सरकारी सेवाओं को बजा लाने के लिए तैयार हैं और यदि ऐसा न करें, तो समझ लेना चाहिए, कि वह वफ़ादार नहीं हैं; अतएव ऐसा ही किया गया और आज्ञानुसार समस्त सिपाही पहरे पर एकत्र हो गए; पर ३८ नम्बर की रेजिमेंन्ट का एक सिपाही भी अपनी जगह से तिल भर न सरका। निस्सन्देह ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट के सिपाहियों ने आज्ञा-पालन की और अपनी-अपनी बन्दूकें भर लीं और उपद्रव शान्त करने के अभिप्रायः से शहर को ओर चल पड़े। थोड़ी देर में वे काश्मीरी दर्वाज़े पहुँच गये; पर चूँकि समय बीत चूका था; अतएव उनका वहाँ जाना सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हुआ; क्योंकि उपद्रवकारी वहाँ से चले गये थे। इससे इसके अतिरिक्त कि वे वहाँ जाकर ठहर गये और कोई लाभ न हुआ।

अब उपद्रवकारियों का कहीं पता तक न था और न किसी ने बतलाया हो कि वे कहाँ चले गए। ७४ नम्बर वाली रेजिमेन्ट के बहुत से सिपाही भी ग़ायब थे। मेजर पोटर्स के आधीन केवल दो कम्पनियाँ वहाँ उपस्थित थीं। थोड़ी देर के पश्चात् अफ्सरों की लाशें गाड़ी पर लाई गईं, जिनके ऊपर उनकी औरतों के गाऊन आदि पड़े हुए उनकी असह्य परवशता की सूचना दे रहे थे। जब ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट शहर चली गई, तो कप्तान डी टिस्टर दो तोपों सहित पीछे रह गए और उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि शीघ्र ही आगे बढ़कर उस विशाल स्थान पर अधिकार करलें, जिसके एक ओर पक्की सड़क थी, जो छावनी की ओर जाती थी और

दूसरी ओर का रास्ता पहाड़ी को जाता था ; अतएव कठिनता से साहब बहादुर ने ३८ नम्बर की रेजिमेन्ट को रास्ते पर अधिकार करने और उसे घेर लेने के अभिप्राय से भेजा । इनका आशय यह था कि कप्तान डी टिस्टर को तोपों पर अधिकार करले । कप्तान साहब भरसक चाहते थे कि इन तोपों के समीप सिपाही एकत्र न हों ; पर फिर भी दिन-भर चार-पाँच सिपाही गोलन्दाजों के चारों ओर चक्कर काटते रहे ।

क़रीब १२ बजे दिन के पहाड़ी पर का बुर्ज अङ्गरेज़ों, मेमों तथा अन्य ईसाइयों से भर गया और इतना हो-हल्ला हो रहा था कि किसी प्रकार का प्रबन्ध आदि करना सम्भव न था। कोई व्यक्ति किसी की सलाह या आज्ञा न मानता था। इसी समय एक सार्जेन्ट ने खबर दी कि उसने सुना है कि ३८ नम्बर रेजिमेन्ट के सिपाही कहते हैं कि यदि तोप की एक आवाज़ भी की गई, तो ३८ नम्बर वाली रेजिमेन्ट के समस्त सैनिक फिर जायँगे और अङ्गरेज़ों का बध कर डालेंगे ।

सन्ध्या हो रही थी, समय बीतता जा रहा था और शहर में चारों ओर आग-ही-आग दिखाई देती थी। क़रीब शाम के शहर में एक बड़े ज़ोर की आवाज़ हुई। यह आवाज़ मैगज़ीन के उड़ने की थी। सिपाहियों ने यह धमाका सुना, तो बिगड़ कर बोले कि "जरनैल यह क्या बात है, क्या हमारे सिपाहियों और आदमियों को इस तरह मारा जाता है ?"

कप्तान डी टिस्टर ने फिर काश्मीरी दरवाज़े की तोपों को वापस लाने का हुक्म दिया। थोड़ी देर के बाद फिर हुक्म हुआ कि मेजर ऐबट ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट को वापस लावें ; अतएव

थोड़ी ही देर में दोनों तोपें बड़े रास्ते पर दिखाई दीं, मानों छावनी की ओर जा रही हों। कप्तान डी टिस्टर ने यह देखकर बिगुल बजाया कि वे आकर पहाड़ी पर उनके साथ शामिल हों; पर वे न फिरे। जब वे न फिरे, तो कप्तान साहब समझे कि सम्भवतः उन्होंने बिगुल की आवाज नहीं सुनी। इस बीच में तोपें ३९ नम्बर की रेजिमेन्ट के एक जत्थे के समीप जा पहुँचीं और उनके पहुँचते ही बन्दूकें छूटने की आवाज़ें आने लगीं और तोपें शहर की ओर मुड़ती हुई दिखाई दीं। कप्तान साहब यह देखते ही तुरन्त घोड़े पर सवार होकर तोपों की तरफ गए; ताकि उनको वापस ले आवें। जब वह करीब पहुँचे, तो उन्होंने आज्ञा दी कि दाहिनी ओर होकर तुरन्त हमारे पास आ जाओ; पर जैसे ही साहब बहादुर समीप पहुँचे, वैसे ही सिपाहियों ने बन्दूकें उनकी ओर कीं और लगातार छः गोलियाँ दाग दीं, जिनमें तीन तो खाली गईं और तीन गोलियाँ घोड़े को लगीं। परन्तु, घोड़े में इतनी शक्ति बच गई थी कि उसने साहब बहादुर को बुर्ज तक पहुँचा दिया। बुर्ज पर पहुँच कर घोड़ा ज़मीन पर गिर कर मर गया और दोनों तोपें और सिपाही शहर की ओर चले गये।

इसके बाद जब लेफ्टेनेन्ट डलोबी भी आगए, तो मेजर ऐबट ने ७४ नम्बर की एक रेजिमेन्ट को, इसलिए रवाना किया कि वह जाकर यह खबर लाए कि मैगज़ीन के उड़ने से जो रास्ता हो गया है, उसमें से वे प्रवेश करते हैं या नहीं? पर वहाँ उपद्रव कारियों की अच्छी तरह मरम्मत हो चुकी थी। वे इतने भयभीत हो गए थे कि वे सब-के-सब एक दम शहर की ओर भाग गए।

इस समय तीन बजे होंगे और काश्मीरी दर्वाज़े में उपद्रव-

कारियों का कोई पता शेष न था। इस बीच में छावनी से हुक्म आया कि दोनों तोपें छावनी को वापस भेज दी जायँ ; अतएव लेफ्टेनेन्ट एस्प्लेसी के साथ तुरन्त तोपें रवाना कर दी गईं। मेजर ऐबट ने अब यह निश्चय किया कि जो मेमें गारद ठहरने को जगह छिपो पड़ी हैं, उन्हें छावनी को वापस भेज देना चाहिए ; अतएव उन्होंने आज्ञा दी कि गाड़ी तैयार की जाय। थोड़ी देर के पश्चात् वही दोनों तोपें, जो छावनी भेजी गई थीं, काश्मीरी दर्वाजे पर वापस आ गईं ; पर लेफ्टेनेन्ट तथा गोलन्दाज़ साथ न थे। दरा-बियों ने आकर बयान किया कि गोलन्दाज़ छोड़ कर भाग गए और बिना उनके हम छावनी न जायँगे। अन्त में तीन-तीन चार-चार सिपाही मिलकर दर्वाज़े के भीतर आए।

करीब साढ़े तीन बजे ब्रिगेडियर साहब का हुक्म मेजर ऐबट के नाम इस आशय का आया कि नम्बर ७४ रेजिमेन्ट के जितने भी सिपाही उनके पास हैं, उनको लेकर तुरन्त छावनी पहुँच जायँ। जब यह हुक्म आया, तो मेजर टैरेन्स और डिप्टी कलक्टर ने कहा कि इस समय इस रेजिमेन्ट को यहाँ से जाना उचित नहीं है ; क्योंकि इनके स्थान पर जब तक दूसरे सिपाही नियुक्त न हो जायँ, इस स्थान को छोड़ना ठीक नहीं ; पर डिप्टी कलक्टर को दूसरा ही भय था। वह ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट का हाल देख चुके थे और उन्हें इनके रंग-ढंग से सन्देह उत्पन्न हो गया था ; परन्तु मेजर ऐबट ने कहा कि चूँकि यह हुक्म मेरे नाम आया है ; अतएव इसका पालन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। पर, डिप्टी साहब ने कहा कि आप ज़रा सब्र करें, मैं स्वयं छावनी जाकर ब्रिगेडियर से यहाँ की आवश्यकता

के सम्बन्ध में निवेदन करता हूँ। यदि वे मान गए, तो ठीक ही है, अन्यथा उनको आज्ञा का पालन किया जायगा। इतना कहकर वे सवार होगए। तोपें पहले ही वापस आ चुकी थीं। डिप्टी कलक्टर ने उनसे कहा कि अब तुम हमारे साथ चलो और चूँकि बहुत-सी मेमें भी मौजूद थीं और वह गाड़ी भी अब तक न आई थी, जिसके लिए हुक्म दिया गया था; इसलिए तोपखाने की एक पेटी खाली कराकर उसमें सबको सवार करा दिया गया और वे छावनी की ओर रवाना कर दी गईं।

अब डिप्टी साहब को गए हुए देर हो गई थी; इसलिए मेजर ऐबट ने अब और अधिक प्रतीक्षा करना उचित न समझा। उनकी इस धारणा का समर्थन एक हवलदार ने भी किया और उन्हें बतलाया कि उसने छावनी की ओर बन्दूकों की आवाज़ सुनी है; अतएव अब यहाँ अधिक विलम्ब करना कदापि उचित नहीं है; अतएव मेजर साहब ने फौज की तैयारी का हुक्म दिया और चल दिए। लगभग दर्वाजे से १०० कदम बाहर हुए होंगे कि ३९ नम्बर की रेजिमेन्ट के सिपाही दर्वाजे के भीतर घुस गए और दर्वाजा बन्द कर लिया। वहीं बदमाश सिपाहियों ने उन अफ़सरों पर, जो अबतक बाहर न निकल सके थे, गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। इस दगा तथा विश्वास-घात के फल-स्वरूप ७४ नम्बर वाली रेजिमेन्ट के कप्तान कारविन सबसे पहले मारे गए। एक सिपाही ने पीछे से गोली मारी और वे तुरन्त ही मर गए। उनके बाद लेफ्टेनेन्ट रूबली इस रेजिमेन्ट-द्वारा सख्त घायल हुए; पर उन्होंने मरते-मरते अपनी दो नली बन्दूक उपद्रवकारियों पर चला दी, जिससे दो-एक उप-

द्रवी मारे गए। ७४ नम्बर रेजिमेन्ट के इन्साईन रोलें ने जः
यह हाल देखा, तो वहाँ से भागे और दीवार फाँद कर खन्दक
में कूद पड़े और दूसरी पटरी पर चढ़कर जंगल के रास्ते से
छावनी को रवाना हो गए। साहब बहादुर को रास्ते में मेजर
पिटसन मिले, जो ७४ नम्बर वाली रेजिमेन्ट के साथ दरवाज़े
से बाहर निकल गए थे। ये दोनों साहब ६ बजे के लगभग
छावनी में पहुँचे। मेजर ऐबट ने बन्दूकों की आवाजें सुनीं, तो
अपने सिपाहियों से पूछा कि यह क्या हो रहा है?

उन्होंने उत्तर दिया कि ३८ नम्बर की रेजिमेन्ट के सिपाही
अपने अफसरों को मारते हैं। यह सुनकर मेजर साहब ने हुक्म
दिया कि वापस चलकर ओहदेदारों की सहायता करो; पर
किसी ने हुक्म न माना और मेजर साहब की सारी चापलूसी
और शिकायतें व्यर्थ गई। सिपाहियों ने कहा कि यही बहुत है कि
हमने तुमको बचा लिया। हमसे वहाँ जाकर कुछ न होगा; बल्कि
तुम्हें हो खो बैठेंगे। यह कहकर बहुत से सिपाही मेजर साहब के
चारों ओर जमा हो गए और बलात् उन्हें छावनीके भीतर ढकेल
ले गए। पता चला कि सिपाहियों ने बड़ी बेदर्दी और बेरहमी के
साथ अफसरों पर गालियाँ बरसाईं। लेफ्टेनेन्ट स्मिथ पहले तो
मुश्किल से चार सिपाहियों के हाथों से बच गये थे; पर बाद में
गुलजारसिंह नाम के सिपाही के हाथ से मारे गए। असल बात
यह है कि तमाम सिपाहियों ने इस व्यक्ति को विशेष तौर से स्मिथ
साहब का बध करने के लिए तैयार किया था। यह इसलिए कि
इन साहब बहादुर ने इस सिपाही पर गफलत और अवज्ञा का
दोष लगाकर उसका पद घटा दिया था। इनके अतिरिक्त लेफ्टेनेन्

इस्बोरो भी घायल हुए थे और फ़ोर्ट साहब की मेम के कन्धे पर गोली लगी थी। शेष जितने पदाधिकारी तथा मेमें थीं, वे सब दीवार पर चढ़ गई थीं, इसलिए उपद्रवकारियों ने गोलियाँ चलाना बन्द कर दिया था। अब वे ख़ज़ाना लूटने के अभिप्राय से रवाना हो गए थे; पर चलते-चलते जितनी तोपें थीं, सब का मुँह बेकस लोगों की ओर करके दाग दिया गया; परन्तु परमात्मा की कृपा से किसी का हानि अथवा क्षति नहीं पहुँची, यद्यपि केवल चालीस गज़ की दूरी थी। जब इन ग़रीबों को दम लेने का अवकाश मिला, तो ये सब ख़न्दक में उतर कर और पार जाकर मेटकाफ़ साहब की कोठी पर पहुँचे। वहाँ सौभाग्य से खाना तैयार था। बेचारे दिन भर के उपवास से निढाल हो गए थे, बैठ कर खाना खाया। यद्यपि पेटभर कर भोजन नसीब न हुआ था तथापि अन्य पदाधिकारियों की अपेक्षा अच्छे रहे, जिन्हें सुबह से न तो कुछ मिला था और न आगे मिलने की आशा ही थी।

मेजर ऐबट शाम के करीब अपने रेजिमेंन्ट के क्वार्टर में गए। वहाँ उनके सिपाहियों ने आपस के परामर्श-द्वारा ही निश्चय किया कि यदि आप यहाँ से किसी अन्य स्थान में चले जाँय, तो अच्छा होगा और उन्होंने नम्रता-पूर्वक कहा कि आप यहाँ से इसलिए चले जाँय, कि यदि ३८ नम्बर की रेजिमेंन्ट के सिपाहियों ने सुन लिया अथवा देख लिया कि आप यहाँ छिपे हुए हैं, तो अवश्य वे आपको मार डालेंगे और हमसे कुछ न हो सकेगा और हम आपकी रक्षा न कर सकेंगे। यह कह कर कुछ सिपाही घोड़ा लाने के लिए छावनी गए। इस बीच में बहुत-सी गाड़ियाँ और बग्घियाँ कर्नाल की ओर जाती और भागती हुई दिखाई

पड़ीं। यह देख कर सिपाहियों ने कहा कि वह देखो, बहुत से अफ़सर और मेमें करनाल जा रहीं हैं। आप भी उन्हीं के साथ चले जाइये; पर इतना सब होते हुए भी उसने बहुत गिड़गिड़ा कर रोकने के लिए कहा; पर शायद वह इस विचार से नहीं रहे कि कहीं उपद्रवी बहाने बाजी से न ठहरा रहे हों,— न ठहरे।

इस बीच में कप्तान हाकी घोड़े पर सवार आगे और मेजर साहब को अपने पीछे सवार कराके ले चले और उन दोनों तोपों तक पहुँचा दिया, जो करनाल की ओर जा रही थीं; अतएव पहिए पर मेजर साहब बैठ गए। इन्साईन लाइन साहब चार मील तक गए; पर वहाँ से आगे न जा सके; क्योंकि दराबियों ने जाने से इन्कार कर दिया और उन दोनों अंग्रेजों को रास्ते में उतार दिया। सौभाग्य से कप्तान डबलीस गाड़ी पर वहाँ पहुँच गए और दोनों साहबों को अपने साथ बैठा कर चल पड़े।

देहली से जितनी गाड़ियाँ और बग्घियाँ चुरा-छिपा कर और जान बचाकर भाग निकली थीं, जिनमें अंग्रेज़ अफसर और उनके बाल-बच्चे थे, सब करनाल पहुँच गए। रास्ते में देहली से चालीस मील की दूरी पर, वे केवल एक स्थान पर ठहरे थे। यहाँ चूँकि डाक बङ्गला था; इसलिए खाना खाने के लिए उतर पड़े थे। सारांश यह कि ये लोग सकुशल करनाल पहुँच गये; पर कप्तान न्यूट और उनके साथ जो भाग निकले थे वे बेचारे अवश्य मैदान में निराश होकर ठोकरें खा रहे थे। अन्त में तीसरे नम्बर का रिसाला लेफ्टेनेन्ट गट के तथा लेफ्टेनेन्ट मेकेंजी के अधीन उधर आ निकला और उसने इन्हें अपनी संरक्षता में ले लिया। इस भटकने वाले जत्थे में कर्नल न्यूट, लेफ्टेनेन्ट प्रोक्टर, लेफ्टेनेन्ट

मेकर ३८ नम्बर रेजिमेंट के तथा लेफ्टेनेन्ट विल्सन तोपखाने के और लेफ्टेनेन्ट सालफिल्ड इञ्जीनियर, लेफ्टेनेन्ट डालमार्ट नम्बर ५४ रेजिमेन्ट के, लेफ्टेनेन्ट जे. फ़ोर्ट मैगजीनवाले अपनी मेम तथा तीन लड़कियों सहित तथा फ्रेजर साहब की मेम शामिल थीं। ये सब लोग कोहनताली नामक एक व्यक्ति के बड़े कृतज्ञ हैं, जो हरचन्दपुर में रहते हैं और डेविस साहब के सम्बन्धी हैं, जिनको समरू की बेगम (?) ने अपना लड़का बना लिया था। कोहन साहब ने इन सब लोगों को बड़े आवभगत से अपनी संरक्षता में रखा था।

१२ मई को २ बजे के करीब निम्नलिखित सज्जन बागपत पहुँचे। जहाँ इस कसबे के नंबरदार ने इन सब लोगों की बेहद मेहमानदारी की। इनके अतिरिक्त भी जो अंगरेज इधर आ निकला, उसकी मेहमानदारी में भी उसने कोई कसर उठा नहीं रखी। बागपत में इन लोगों ने खाना खाया और मेरठ की ओर चल पड़े और सूर्यास्त से पहले मेरठ पहुँच गये। इस जत्थे में ये सज्जन थे—अपनी मेम सहित कप्तान विल्सन, हॉकी तथा इनसाइन, ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट के हिन्दोस्तानी कप्तान, अपनी स्त्री सहित डीटिस्टर, मिस हेजिन्स, अपनी माता सहित कस्टम के कलक्टर मरनी साहब तथा अपनी बीबी-बच्चों सहित हेली साहब।

एक और जत्था, जिसमें लेफ्टेनेन्ट डाज़वेल एडजिकन तथा एक्ल्यू साहब सहित रेज़ साहब तथा लेफ्टेनेन्ट डियूली थे। इनका कहीं पता-निशान न चला। ऐसा अनुमान है कि देहातियों के साथ मारे गये।

लेफ्टेनेन्ट डियूली, लेफ्टेनेन्ट फ़ॉरेस्ट और लेफ्टेनेन्ट रेज़

तथा अन्य अङ्गरेजों ने मैगज़ीन को सुरक्षित रखने में बहुत वीरता-पूर्वक प्रयत्न किया ; पर चूँकि कुछ लोग मैगज़ीन के भीतर थे, और वह भी सख्त दगाबाज थे तथा बाहर उपद्रवकारियों का बड़ा भारी जमाव हो गया था ; अतएव उसकी रक्षा सम्भव न थी ; इसलिए मैगजीन में आग लगा कर उसे उड़ा दिया गया। इस भगदड़ में कुछ अङ्गरेज़ भाग निकले थे। इन्हें लेकर एक लेफ्टेनेन्ट फॉरेस्ट साहब थे और इनके ही पत्र से मैगज़ीन की सरक्षता का विस्तृत विवरण प्राप्त हो सका, जिसका उल्लेख नीचे किया जाता है।

मैगज़ीन उड़ने की कहानी

११ मई को प्रातःकाल ७ और ८ बजे के बीच सर पी. ओफल्स मेटकॉफ साहब मेरे मकान पर आये और कहा कि मैग-ज़ीन में चलकर दोनों तोपें निकलवा कर पुल पर भेज दो, ताकि उपद्रवकारी दरिया को पार न कर सकें। मैं इनके साथ मैगज़ीन में आया। यहाँ लेफ्टेनेन्ट डियूली, कन्डक्टर एकले सहित लेफ्टेनेन्ट रेज़, शाबकली साहब एक्टिंग सब कन्डक्टर क्रू, सारजेन्ट एडवर्ड और अपने हिन्दोस्तानी मातहतों सहित स्टूअर्ट साहब मौजूद थे। सर पी. ओफल्स अपनी गाड़ी से उतरे और मैं तथा लेफ्टेनेन्ट देवली साहब इनके साथ बुर्ज पर गए, जो नदी की ओर था। यहाँ से पुल साफ़ दिखाई पड़ता था। वहाँ पहुँचकर देखा, तो उपद्रवकारी पुल पार कर रहे थे।

यह हाल देखकर सर पी. ओफल्स, मेटकॉफ साहब लेफ्टेनेन्ट डियूली साहब को साथ लेकर शहरपनाह (प्रवेश-द्वार) का दर्वाज़ा

देखने गए कि वह बन्द कर दिया गया है या नहीं; पर पुल-दर्वाजे खुले हुए थे और उपद्रवकारी विशेप प्रसन्नता-पूर्वक किले के दर्वाजों में प्रवेश कर रहे थे और शाही मकानात तक पहुँच गए थे। जब लेफ्टेनेन्ट डियूली वापस आए, तो उन्होंने मैगज़ीन के दरवाज़े बन्द कर उनमें सलाखें लगवा दीं। दर्वाजे के अन्दर छ पेनी की दोनों तोपों को खूब भरवाकर एक्टिङ्ग सब-कन्डक्टर साहब और सार्जेन्ट स्टूअर्ट के अधीन कर दी गईं और इन लोगों को बत्तियाँ देकर यह हुक्म दे दिया गया कि यदि उपद्रवकारी दर्वाजे के भीतर प्रवेश करें, तो दोनों तोपें दाग दी जावें। मैगज़ीन के बड़े दर्वाजे पर भी इसी तरह दो तोपें नियुक्त कर दी गईं और दर्वाजे के भीतर गोखरू बिछा दिए गए। और भी मजबूती की दृष्टि से दो अन्य तोपें इस तरह लगा दी गईं कि इनका गोला दर्वाजे और बुर्ज तक पहुँचता था; इसके अतिरिक्त दर्वाजा और गोदाम (दफ्तर सामान) के बीच रास्ता था, इन दोनों रास्तों पर तीन-तीन छ पेनी और चौबीस पेनी का गुब्बारा इस तरह गाड़ दिया गया कि जिधर चाहें घुमाकर इर्द-गिर्द के मकानों की रक्षा कर सकें। जब गुब्बारा और तोपें लगा दी गईं, तो इन सब में दुधारे छुरे भरवा दिए गए। सारांश यह कि रक्षा का जहाँ तक प्रबन्ध सम्भव था, करके हिन्दोस्तानी कार्य-कर्ताओं को हथियार बँटने लगे; पर इन लोगों ने इन्हें बहुत असन्तुष्ट भाव से ग्रहण किया। इन लोगों के चेहरों पर किसी प्रकार की घबराहट नहीं पाई जाती थी। इसके बाद कन्डक्टर एकली और सार्जेन्ट स्टूआर्ट ने एक पलीते में आग लगाई। उनको यह आदेश था कि जब लेफ्टेनेन्ट डियूली की आज्ञा से कन्डक्टर एकली अपनी टोपी सिर से उठावें,

उसी समय पलीते में आग दे दो ; अतएव साहब बहादुर ने यह शिताबा उड़ाया ; मगर उस समय जब कि गुब्बारे का एक-एक गोला चल चुका था। इतनी ही देरी में किले से गारद आया और देहली के सम्राट् के नाम पर मैगज़ीन का अधिकार माँगा ; पर इसका इधर से कोई उत्तर न दिया गया। इसके बाद मैगज़ीन को गारद के सूबेदार लेफ्टेनेन्ट दियूली साहब को इस बात की सूचना दी गई कि देहली-सम्राट् ने उपद्रवकारियों को कहला भेजा है कि हम सीढ़ी भेजते हैं, ताकि तुम लोग मैगज़ीन की दीवारों पर चढ़ जाओ ; अतएव थोड़ी ही देर में सीढ़ी आगई और उसे लगाकर कुछ हिन्दोस्तानी अमले दीवारों पर चढ़कर बाहर उतर गए। उपद्रवकारियों का भी एक विशाल झुण्ड पहुँच गया। हमारे पास जब तक गोला-बारूद रहा, हम खूब मुकाबला करते रहे ; अतएव उपद्रवकारियों को इमसे बड़ी हानि पहुँची ; पर चूँकि उनकी संख्या अपार थी और रञ्जक के ताज· दान विश्वासघाती सिपाही पहले ही से छिपाकर रख गए थे ; इसलिए बाध्य होकर हमें मैगज़ीन उड़ा देना पड़ा।

हिन्दोस्तानी सैनिकों में से रहीमबख्श नामी एक व्यक्ति उपद्रवकारियों के षड़यंत्र में मिला हुआ था, वह मैगज़ीन के दर्वाजों का दर्बान था और भीतर का सब हाल बाहर उपद्रव-कारियों से कह देता था। यह बार-बार अन्दर आता-जाता था और सब हाल कह देता था। लेफ्टेनेन्ट दियूली इस व्यक्ति की अनुचित कार्यवाहियों से इतने अधिक खीज गए थे कि उन्होंने बाध्य होकर यह आज्ञा दे दी थी कि यदि यह व्यक्ति फिर बाहर जाय, तो इसे गोली से मार दो।

लेफ्टेनेन्ट रेज़ ने दूसरे अङ्गरेजों के सहयोग से मैगज़ीन की रक्षा के लिए जो भी उपाय सम्भव था किया। कन्डक्टर निकल ने जितनी तोपें मौजूद थीं, सब को कम-से-कम चार बार दागा। उन्होंने इतनी वीरता तथा दूर दर्शिता से अपना कर्तव्य पालन किया, मानों वे परेड पर काम कर रहे हों, यद्यपि उपद्रवकारी, जो ४० या ५० गज़ की दूरी पर थे, हर तरफ से गोलियों की वर्षा कर रहे थे। जब गोला-बारूद समाप्त हो गया, उस समय कन्डक्टर साहब की कोहनी से ज़रा ऊपर एक गोली आकर लगी, जो बाद में निकाल ली गई। इसके बाद दो गोलियाँ मुझे भी लगीं। इस युद्ध और उपद्रव के बाद लेफ्टेनेन्ट डियूली ने मैगजीन को उड़ा देने का हुक्म दिया। इस का पालन कण्डक्टर निकिल ने तुरन्त किया। तमाम पलीतों में आग लगा दी गई। यद्यपि कोई ऐसा न बचा था, जिसको कुछ-न-कुछ क्षति न हुई हो ; पर जान से बच गए और उन रास्तों से, जो मैगज़ीन के उड़ने से उसकी दीवारों में बन गए थे, वे दरिया की ओर बाहर आ गए। लेफ्टेनेन्ट डियूली और मैं जीवित काश्मीरी दरवाजे तक पहुँच गये। मैं नहीं कह सकता कि औरों के साथ क्या हुआ? लेफ्टेनेन्ट रेज़ और कन्डक्टर निकल सलामत बच गए। सार्जेन्ट मवेल मैगज़ीन के रक्षार्थ आ रहे थे कि उपद्रवकारियों ने उन्हें रास्ते ही में मार डाला। इस दुर्घटना के सम्बन्ध में ५४ नम्बर को रेजिमेन्ट के एक अन्य अफसर की चिट्ठी नीचे दी जाती है।

दूसरी चिट्ठी

११ मई शनिवार के दिन देहली की समस्त सेना को परेड

करने और तीसरे रिसाले के कोर्ट मार्शल का निर्णय सुनने की आज्ञा प्रदान की गई ; अतएव सारी सेना परेड पर एकत्र हुई। सब परेड करने के बाद सदा की भाँति अपनी-अपनी छावनी में चले गये। करीब ९ बजे के कर्नल रेली वापस आये, ताकि अपनी रेजिमेन्ट और दो तापें नदी के पुल पर ले जायँ और तीसरे रिसाले के उपद्रवकारियों को दरिया पार करने से रोकें ; अतएव गोरों की समस्त रेजिमेन्ट आज्ञा पाते ही तुरन्त बाहर आई और दस मिनिट में तैयार होकर सहर्ष रवाना हो गई। जब मैं परेड पर पहुँचा, तो कर्नल साहब ने मुझे हुक्म दिया कि अपनी कम्पनी को सशस्त्र लेकर तोपखाने में जाकर दोनों तोपों के साथ रहो, जो रवाना होनेवाली हैं। चूँकि कप्तान डिटिस्टर का बङ्गला रास्ते में था ; इसलिये मैं उनके पास गया और उनसे तोपों की रवानगी के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। साहब बहादुर ने कहा कि अभी तैयार होती हैं। तुम सदर बाज़ार में उनकी प्रतीक्षा करो, दोनों तोपें वहीं पहुँचेंगी। मैं इनकी आज्ञानुसार सदर बाज़ार में जाकर ठहर गया। मुझे वहाँ पहुँचे आध घण्टे के क़रीब गुज़र गया ; पर तोपों का अभी तक कहीं पता न लगा। बाध्य तथा हताश होकर मैंने लेफ्टेनेन्ट वाईमार्ट से कहा कि आप जाकर पूछें कि आख़िर तोपों के आने में इतनी देर क्यों हुई और मैं अपनी कम्पनियाँ लेकर शहर की ओर जाता हूँ, ताकि समय व्यर्थ नष्ट न हो। लेफ्टेनेन्ट वाईमार्ट जिस समय पहुँचे, उस समय तोपें बाहर आ रही थीं और मेरे पास उस समय पहुँचीं, जब मैं अपना रास्ता आधे से अधिक तै कर चुका था। जब मैं गारद से १०० गज़ के समीप पहुँचा, तो ७४ वीं रेजिमेंट के कप्तान विलसन मेरे पास आए और मुझसे

बोले कि शीघ्र चलो ; क्योंकि उपद्रवकारी वहाँ पहुँच गए थे और इन अभागों ने ७४ वीं रेजिमेन्ट के कुल अफसरों को मार डाला था। यह सुनकर मैंने हुक्म दिया, कि दोनों तोपें और सब बन्दूकें भर ली जायँ। इसी बीच में मैंने देखा, कि कर्नल साहब बुरी तरह घायल होकर मेजर साहब की संरक्षता में एक पालकी पर पड़े चले आ रहे हैं। चूँकि मेरी दोनों कम्पनियों ने बन्दूकें भर ली थीं ; इसलिए मैं इनको लेकर उपद्रवकारियों की तलाश में निकला और गारद में आया ; पर इस समय वहाँ कोई उपद्रवी न था और न मेरे पहुँचने के पहले वहाँ ५४ वीं रेजिमेन्ट की छठी कम्पनी का कोई सिपाही ही था। यह हाल देखकर मैंने दोनों तोपें शहर के दर्वाजे पर लगा दीं और जगह जगह पहरे खड़े कर दिए। इस स्थान पर मैं यह भी बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि कप्तान विल्सन ने मुझसे कहा था कि जो गारद पहरे में था, जिसमें ५० सिपाही ३८ वीं रेजीमेन्ट के थे, ६ गज की दूरी पर खड़े कर्नल रेली के घायल होने का दृश्य देखते रहे ; पर किसी ने भी सहायता न की ! यद्यपि कप्तान विल्सन ने बहुत-कुछ कहा-सुना ; पर वे टस-से-मस न हुए। स्वयं कर्नल रेली का कहना है कि मुझे मेरी ही रेजिमेन्ट के सिपाही ने संगीन से घायल किया है। डॉक्टर स्टूअर्ट का कहना है, कि मैंने साहब बहादुर को बागी सिपाहियों की खुशामदें करते और हाथ चूमते देखा था ; इस पर भी इन दगाबाजों ने उपद्रवकारियों को रोकने का, न तो कोई प्रयत्न ही किया और न अफसरों को मारे जाने से बचाया।

सारांश यह कि जब कोई उपद्रवकारी दिखाई न पड़ा, तो

हमने अफसरों की लाशों को ढूंढ़ना शुरू किया। हमने उनकी लाशें यत्र-तत्र मैदानों में गिर्जाघर के समीप तथा उसके निकटवर्ती मकानों में पाईं और इन सारे शवों को गारद वाले मकान के चौक में एकत्र किया। तलाश करने से जिन अफसरों की लाशें हमें मिलीं उनके नाम ये हैं—

कप्तान स्मिथ, कप्तान रूस, लेफ्टेनेन्ट एडवर्ड, वायरफील्ड साहब, डाक्टर दोजङ्ग और लेफ्टेनेन्ट बटलर। इनके अतिरिक्त लेफ्टेनेन्ट इस्बार्न तथा इन्साईन इन्जल्ड् साहब भाग गए थे। बाद में हमारे पास सही-सलामत आ गए। इनमें से लेफ्टेनेन्ट बटलर के सिर पर एक सख्त जख्म लगा था। इनके कथनानुसार उन्हें शहर वालों ने मारा था। अब शहर वालों ने गिर्जाघर और अङ्गरेजों की कोठियों का खूब लूटना शुरू किया। मैंने बड़ी कठिनाई से गारद तक जीवित पहुँचा; पर इतना कुछ होते हुए भी इस समय शहर में पूर्ण शांति विराज रही थी। इसके बाद मैगज़ीन की तरफ तोपों के चलने की आवाज़ सुनाई दी। मैं यह बतलाना भूल गया, कि दोपहर के बाद ७४ नम्बर की रेजिमेन्ट मेजर ऐबट के आधीन आचुकी थी। उसके एक घण्टे के बाद मैगज़ीन के उड़ने की आवाज़ आई; परन्तु हमें इस बात का पता न चला कि आखिर मैगज़ीन को किसने उड़ाया और वह क्योंकर उड़ी? थोड़ी देरी के बाद लेफ्टेनेन्ट डियूली ने, जो मैगज़ीन से भाग कर हमारे पास आए थे, सब हाल सुनाया। उन्होंने कहा कि मैंने तथा सार्जेन्टों ने यथाशक्ति उसकी रक्षा की और जब तक उसका बचाना सम्भव था, तब तक मैंने उसे नहीं उड़ाया; लेकिन जब देहली सम्राट् की भेजी हुई जङ्गी सीढ़ियाँ आगईं और उपद्रवकारी

भीतर तक पहुँच गए और खलासी आदि भी हमसे विमुख होकर उपद्रवकारियों से मिल गये, तो बाध्य होकर हमने उसे उड़ा दिया। हम नहीं जानते कि इसमें कितने आदमी मरे; पर मैं बड़ी कठिनाइयों से भाग निकला हूँ। साहब बहादुर के चेहरे से प्रकट होता था कि यदि भगवान की कृपा इनकी सहायक न होती, तो इनका जीवित रहना सम्भव न था; क्योंकि बारूद की चोटों से इनका चेहरा काला हो गया था।

इस रोज़ सारे दिन ब्रिगेडियर साहब का कोई हुक्म हमारे पास न आया, यद्यपि हमने कई बार उनके पास आदमी भेजा कि हमें कोई आज्ञा दें; पर साहब बहादुर तथा ब्रिगेडियर मेजर एक बार इधर इतना भी देखने न आए कि आखिर यहाँ क्या हो रहा है, यद्यपि इनका यहाँ आना बहुत जरूरी था। यह ज़रूर था कि साहब बहादुर ने दो तोपें हमारी मदद को भेज दी थीं; पर फिर वापस मँगवा लीं। ३८ वीं रेजीमेन्ट के डॉक्टर को किसी तोपखाने के एक सिपाही ने सख्त घायल कर डाला। इनके चेहरे पर भीषण घाव थे। डॉक्टर साहब इलाज के लिये गारद में आए थे और अब वापस जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें फिर ज़ख्मी कर दिया गया। शाम के ५ बजे के करीब इस आशय का एक आज्ञा पत्र आया कि एक रेजिमेन्ट नम्बर ७४ को, जो मेजर ऐबट के अधीन थी, पहाड़ी पर जहाँ ३८ नम्बर की रेजिमेन्ट पहले से ही तैयार खड़ी है, तुरन्त आजाय। सैनिक तैयार होकर कूच की प्रतीक्षा में खड़े थे कि यकायक ३८ नं० के रेजिमेन्ट के कुछ सिपाहियों ने अफ़सरों पर गोलियाँ चलाना आरम्भ कर दिया, जो चौक में खड़े थे। दैवयोग से मैं काश्मीरी

दरवाजे के समीप था। मैंने देखा कि एक अफ़सर घायल होकर ज़मीन पर गिरा ; इतने में मेरी रेजिमेन्ट के एक सिपाही ने मेरे कन्धे पर हाथ रख कर और जोर से धक्का देकर मुझे बाहर निकाल दिया और बोला कि यदि एक क्षण भी तुम यहाँ ठहरोगे, तो मार दिये जाओगे। जैसेही मैं बाहर आया कि ७४ नं० की रेजिमेन्ट का एक सिपाही मेरे साथ हो गया। हमने सिपाही का साथ लेकर रास्ता छोड़ कर, दूसरे रास्ते से पहाड़ी के बुर्ज की राह ली और वहाँ पहुँच कर ब्रिगेडियर साहब और दूसरे अंग्रेजों से सब हाल बतलाया। यहाँ छावनी में बहुत-सी मेमें तथा अन्य पदाधिकारी उपस्थित थे, यह समाचार सुन कर सब के भागने का निश्चय हुआ। उस समय लोगों की परेशानियों का दृश्य, मनुष्यों की भीड़ तथा पालकी और गाड़ियों की भरमार देखने योग्य थी। ये सब करनाल की तरफ रवाना हुए। पर जब उस स्थान पर पहुँचे, जहां से एक रास्ता मेरठ की ओर जाता था, तो कुछ सवारियाँ मेरठ की ओर रवाना हो गईं। मुझे इससे पूर्व यह बतला देना चाहिए कि लगभग ११ बजे के ५४ नं० की रेजिमेन्ट की लाइट कम्पनी का एक सिपाही मेरे पास आया और उसने कहा कि उसे रेजिमेन्ट वालों ने इसलिए मेरे पास भेजा है, कि जहाँ के लिए मैं आज्ञा दूँ वहाँ जा यें। मुझे यह सुन कर आश्चर्य्य हुआ और मैंने पूछा कि आखिर रेजिमेन्ट कहाँ है ? उसने कहा कि वह सब्जीमण्डी में है। मैंने उससे पूछा कि रेजिमेन्ट किस लिए और क्यों वहाँ गई ? उसने उत्तर दिया कि जिस समय उपद्रवकारियों ने अफ़सरों पर आक्रमण किया, तो कुल सिपाही चिन्तित हो कर भाग गए और

अब सारे शहर में घूमघाम कर सब्जीमण्डी में एकत्र हुए हैं। यह सुन कर मैंने हुक्म दिया कि सब मेरे पास चले आवें ; अतएव मैं गया ; और सब सिपाही, निशान तथा झण्डे आदि लेकर आ गए।

इसके पश्चात् हवलदार मेजर ने आकर कहा कि हम लोग तीसरे नम्बर के रिसाले के सवारों के साथ थे और उन लोगों को साथ देने के लिए बहुत प्रोत्साहित किया ; पर सिपाहियों ने इन्कार कर दिया। यहाँ तक तो मैंने आँखों देखी ही घटनाओं का वर्णन किया है, इसके बाद गारद में आने पर जो बातें प्रकट हुईं, उनका उद्धरण एक सज्जन की चिट्ठी से किया जाता है, जो वहाँ उपस्थित थे और जो दूसरे अंग्रेजों के साथ भागे थे।

३८ नम्बर की रेजिमेन्ट के सिपाहियों ने जब अपने ही अफसरों पर गोलियाँ बरसानी शुरू कीं, तो तमाम अफसरों ने एक मोरी के रास्ते से, जो कमरे के भीतर थी, भाग कर अपनी रक्षा की ; पर जब तक भागें तबतक तीन अफसर ; अर्थात्—कप्तान गार्डन और लेफ्टेनेन्ट स्मिथ तथा लेफ्टेनेन्ट रैलोंबिली मारे गये। लेफ्टेनेन्ट स्वोर्न की टाँग में एक गोली आकर लगी ; पर किसी तरह साहब बहादुर निश्चित स्थान पर पहुँच गए और घाव की मरहम-पट्टी करने के बाद वे खंदक में कूद पड़े और उसकी तह तक पहुँच गए। दूसरे अंग्रेज भी कूदने के लिए तैयार थे कि स्त्रियों तथा बच्चों की करुणा-पूर्ण चीत्कार उन्हें सुनाई दी। ये सब मेमें गारद के कमरे के भीतर मौजूद थीं। यद्यपि गोलियों की वर्षा हो रही थी, तथापि ये लोग भीतर वापिस गए और सब स्त्रियों को अपने रुमालों के सहारे, जिन्हें एक दूसरे में बाँध कर रस्सी का काम

लिया गया था, खन्दक में नीचे उतार लिया और स्वयं भी नीचे उतर गए। इसकी दूसरी ओर की दीवार पर चढ़ कर उन्हीं रुमालों के सहारे फिर सब औरतों को खींच लिया और वहाँ से इन लोगों ने नदी की ओर प्रस्थान किया; पर प्रत्येक क्षण उन्हें इस बात का भय था कि कहीं उपद्रवकारी न पहुँच जायँ और उन्हें मार डालें। पर, परमात्मा की कृपा से उपद्रवकारियों ने इनका पीछा नहीं किया और सबसे आश्चर्य-जनक बात तो यह है कि उन्हों ने उस समय भी इन पर गोलियाँ नहीं चलाईं, जब ये सब स्त्री-पुरुष खंदक में उतर रहे थे। यद्यपि इनके उतरने-चढ़ने में आध घण्टा अवश्य लगा होगा। सारांश यह कि ये सब अंग्रेज और उनकी स्त्रियाँ दरिया के पार पहुँचीं और वहाँ से बहुत ही असहाय-पूर्ण अवस्था में और कई उपवास के बाद ये लोग एक देहात में पहुँचे, जो देहली से १२ मील पर स्थित है। यहाँ के नम्बरदार ने इन लोगों को इस बात का वचन दिया था कि वह एक पत्र मेरठ रवाना कर देगा; अतएव मेरठ से तीसरे दिन कुछ फौज आई और वह इस असहाय जत्था को अपनी संरक्षना में मेरठ ले गई। लेफ्टिनेण्ट सेलर और इनसाईन इञ्जला साहब भी भागे थे अवश्य; पर वे किसी गाँव में मार डाले गए।

अंग्रेज़ों को कत्ल करने तथा लूटने के बाद उपद्रवकारियों ने एक शाहज़ादे को तख्त पर बैठाया और अपना चौकी-पहरा सब दरवाजों पर बैठा दिया। किले के चारों ओर तोपें चढ़ा दी गईं। ख़ज़ाना भी किले ही में रक्खा गया; क्योंकि उपद्रव-कारियों का विचार था कि यदि अंग्रेज़ हम पर आक्रमण करेंगे, तो हम इस स्थान को अन्त तक न छोड़ेंगे।

उपद्रवकारियों ने केवल अंग्रेजों पर ही अत्याचार नहीं किए ; बल्कि शहर वालों को भी इसका वह शिकार बनना पड़ा कि जिससे परमात्मा बचावें। उपद्रवकारी यह बात अच्छी तरह जानते थे, कि देहली वैभव-पूर्ण नगरी है ; अतएव उन्होंने उसे जी खोल कर लूटा। एक हिन्दुस्तानी, जो इस बीच में ; अर्थात्—३१ मई से २३ जून तक देहली में था, इस लूट-खसोट के सम्बन्ध में बयान करता है कि उपद्रवकारियों ने नागरिकों के पास एक घोड़ा तक नहीं छोड़ा—सब कुछ छीन लेगए। प्रायः दुकानदारों को केवल इस अपराध के लिए जान से मार डाला गया कि वे अपनी चीजों का उपयुक्त मूल्य मांगते थे। वयोवृद्ध व्यक्तियों का अपमान किया जाता था। नदी के पुल पर जो गारद तैनात थी, उसने प्रत्येक मुसाफिर को लूट लिया। जिस दिन से शहर में प्रवेश किया और जब तक वहां रहा, मैंने कभी पूरा बाज़ार खुला हुआ नहीं देखा। केवल दो चार बनियां आदि की दूकानें मामूली सामानों के साथ खुला करती थीं। शहर में रहने वाले और दूकानदार खेद प्रकट करते थे। सर्वसाधारण की स्थिति उपवासों तक पहुँच गई थी। विधवा स्त्रियाँ घरों में बैठ कर आँसू बहाया करती थीं और प्रातः-काल से सायंकाल तक उपद्रवकारियों को कोसा करती थीं। अंग्रेज़ों के नामी तथा प्रसिद्ध नौकरों ने घर से बाहर निकलना तक बंद कर दिया था।

उपद्रवकारियों को जहाँ कहीं भी नगद रुपया दिखाई पड़ता, वह तुरंत उसे लूट लेते थे। यह सब रुपये अभी तक सिपाहियों के अधिकार में थे और खजाने में एक कौड़ी तक दाखिल नहीं हुई थी। कुछ रेजिमेन्टों के पास इतना अधिक रुपया जमा हो

गया था कि वह कठिनता पूर्वक चल फिर सकती थी ; अतएव बोझ के कारण उन्होंने रुपयों का मोहरों में बदल लिया था। महाजनों ने मोहर का दर इतना बढ़ा दिया था कि जो मोहर सोलह रुपये के दर की थी, उसके २४, २५ रुपये कर दिये। जिस प्रकार पहले सिपाहियों ने महाजनों को लूटा था, ठीक उसी प्रकार अब महाजन सिपाहियों को लूटने लगे—यहाँ तक लूटा कि सोने की मोहरों की जगह उन्होंने पीतल की मुहरें भिड़ा दीं। जिस फौजी दस्ते के सिपाहियों के हाथ कुछ भी लूट का माल नहीं लगा, वह अमीर सिपाहियों से डाह करते थे। अमीर सिपाही लड़ाई के मैदान में न जाते थे, इस बात को लेकर दरिद्र सिपाही इनको बहुत कुछ बुरा-भला कहते थे। मैंने तो यहाँ तक सुना कि अमीर और गरीब सिपाहियों में लोहा बजने वाला है।

एक रेजिमेन्ट अलीगढ़ से, १५० सवार मैनपुरी से, थोड़े से बिना हथियारों वाले सिपाही आगरे से, एक रेजिमेन्ट और दो सौ सवार हाँसी हिसार से, थोड़े से हथियार वाले सिपाही अम्बाला से, दो सौ सवार और दो कम्पनी मथुरा से, छठवाँ रिसाला लाइट और दो रेजिमेन्ट जालंधर से, दो रेजिमेन्ट और तोपखाने नसीराबाद से मेरे सामने देहली में घुसे और उपद्रवकारियों में सम्मिलित हो गए।

मुरादनगर, रुहतक, अलीगढ़ हाँसी, मथुरा, गढ़ी, हरसर और तरसीला आदि स्थानों के सरकारी खजानों को उपद्रवकारियों ने लूट लिया और लूटा हुआ धन शाही खजाने में सम्मिलित कर दिया। बादशाह की ओर से प्रति पैदल चार आना और प्रति सवार एक रुपया दिया जाता था। मुझे यह नहीं

मालूम कि सरकारी खजाने से कितना रुपया आया; परन्तु १७ जून को सरकारी खजाने में एक लाख उन्नीस हजार रुपया मौजूद था।

शहजादे शाही फौज के अफसर नियुक्त हुए थे। मुझे इन विलास-प्रिय लोगों पर दया आती थी। कभी-कभी इन बेचारों को ठीक दोपहर में शहर से बाहर जाना पड़ता था, तो बड़ी मुसीबत हो जाती थी। तोप और बन्दूक की आवाज़ से इनका दिल धड़क उठता था और इस पर तुर्रा यह कि शासन के नियमों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। सिपाही उनकी अज्ञानता पर दिल खोल कर हँसते थे, बल्कि कभी-कभी तो उनकी मूर्खता-पूर्ण आज्ञाओं के कारण उनसे बद जबानी भी कर बैठते थे। फौज के लिये बादशाह लड़ाई के मैदान में मिठाई इत्यादि भेजते थे, तो यार लोग उसको लूट का माल समझ कर रास्ते ही में चट कर जाते थे। शाही फौज की बहादुरी भी सराहना के योग्य ही थी। वास्तव में वे लोग बड़े चतुर थे। जब उनका दिल चाहता कि लड़ाई के मैदान से वापस आजायँ, तो फटे-पुराने कपड़े पैरों पर ज़ख्म के बहाने बाँध कर, लंगड़ाते और हाय-हाय करते वापस आ जाते।

३० जून को रात्रि के समय हिण्डन पुल पर उपद्रकारियों के होश-हवास उड़ गये। बहुत से सिपाहियों ने अपनी तलवारें और बन्दूकें कुएँ मे डाल दी थीं और तितर-बितर होकर जंगलों और देहातों की ओर भाग गये थे; क्योंकि उनको विश्वास हो गया था कि अंगरेज़ी फौज़ उनका पीछा करती चली आती है।

यदि उस दिन अंगरेजी फौज आजाती, तो दिल्ली पर उसी

दिन कब्ज़ा हो जाता; इसलिये यह तितर-बितर लश्कर फिर दूसरे दिन शहर में वापस आया।

उनमें से बहुतरे सिपाही लापता हो गये। रास्ते में गूजरों ने उनको खूब लूटा। इस प्रकार जब वह शहर में वापस हुए, तो उनके पास कौड़ी भी न थी।

बादशाह की आज्ञाओं का कभी-कभी ही पालन किया जाता था! और शाहज़ादों को तो कोई यह भी न पूछता था कि तुम हो किस खेत की मूली। सिपाही बिल्कुल मनमानी करते थे। न बिगुल को ही मानते थे और न सेनानायकों की आज्ञाओं को और न सौंपा गया काम ही करते थे। फ़ौज की गिनती तो एक ओर, वे कभी वरदी तक न पहनते थे।

रईस, शाहज़ादे और बेगमें अपने विगत जीवन के सुखों पर शोक करते थे। शाहज़ादे फौज की भाषा न समझते थे और बिना द्वि-भाषिये के बात-चीत न कर सकते थे।

शेल के गोलों से शहर के मकान गिर गये थे। किले के दीवानख़ास में जो तख्त संगमरमर का बिछा हुआ था, वह चूर-चूर हो गया।

देहली का अंगरेजी मदरसा पहले ही दिन लूट लिया गया और अंगरेज़ी किताबें गली कूचों में पड़ी हुई थीं। जो मनुष्य अंगरेज़ी बोलता था, सिपाही उसकी खूब मरम्मत करते थे और उसको कैद कर दिया करते थे।

मैगज़ीन ११ मई को फटा था, इसके कारण-आस-पास के बहुत-से मकानों को नुक़सान पहुँचा था। लगभग ५०० आदमी इसके कारण मर गये थे। घरों में इतनी गोलियाँ गिरी थीं कि

बच्चों ने आध-आध सेर और कुछ ने तो सेर-सेर भर चुन ली थीं।

इसके पश्चात् उपद्रवकारियों और शहर के लोगों ने मैग-ज़ीन का खूब लूटा। जितना भी सामान—टोपी बन्दूक, तलवार, संगीन इत्यादि ले सके, उठाकर ले गये।

खलासियों ने अपने अपने घरों को अच्छे-अच्छे हथियारों और सामान से खूब पाट लिया था और उसे रुपये के तीन सेर के हिसाब से तौल कर बेच डाला।

तांबे की चादरें रुपए की तीन सेर बिकती थीं। बन्दूकों का मूल्य अधिक-से-अधिक ॥। था; परन्तु मारे डर के कोई खरी-दता न था। अच्छी-से-अच्छी अंगरेजी किर्च ।) को भी मँहगी समझी जाती थी और संगीन तो –) में भी मँहगी थी। ताज़दान (खाना खाने के बरतन) और परतलें इतने अधिक थे कि उनके लूटने वालों को एक कौड़ी भी न मिली। उनको किसी ने खरीदा ही नहीं। मजनू के टीले की आधी बारूद तो गूजर और जाट लूट ले गये थे और आधी शहर में आगई थी।

तीसरी कहानी

मैगज़ीन की रक्षा के सम्बन्ध में कन्डक्टर यगली और दूसरे अंगरेज अफ़सरों का उल्लेख हो चुका है। नीचे की चिट्ठी से विदित होगा कि यगली साहब के ऊपर मैगज़ीन उड़ने और भागने के बाद क्या बीती।

यगली साहब ने मैगज़ीन से निकलते ही यह सराहनीय कार्य किया कि राबर्ट साहब की मेम और उनके चार साल के बच्चे को नदी पार कराया। इस कार्य में यह कठिनाई थी कि मैगजीन की लड़ाई में यगली साहब का हाथ बिलकुल बेकाम होगया था, और नदी पार करने के बाद उनके पांच-छ चोटें और लगी थीं, क्योंकि जमुना पर उपद्रवकारियों ने उन्हें घेर लिया था और उनके सब कपड़े, सिवाय एक क़मीज़ के, उतरवा लिये थे।

वह १२ दिन तक मारे-मारे फिरने के बाद लेफ्टेनेन्ट रेज़ और उनके बाल-बच्चों के साथ मेरठ पहुँचे। रेज़ साहब के चले जाने पर एक दिन बाद यगली साहब गये थे। रेज़ साहब से उनका मिलन ऐसी ही दशा में हुआ था, जब कि उपद्रवकारियों ने उनको घेर लिया था और जो कुछ उनके पास था, छीन लिया था। रेज़ साहब और उनकी मेम साहब मुझ से कहते थे कि यदि सम्वाद-दाता बहादुरी से इसकी सूचना उनको न देता, तो उनका मेरठ पहुँचना अत्यन्त कठिन हो जाता। सम्वाददाता ने कई बार अपना

सिर जमीन पर रख दिया। उपद्रव-कारियों में से एक व्यक्ति ने अपना पैर उसकी गरदन पर रख दिया और चाहा कि उसका सिर काट डाले, तो उसने कहा कि मैं अपने सिर को इस उद्देश्य से निछावर करता हूँ कि मेरी जान लेने के बाद तुम इन स्त्रियोंको बेपरदा न करोगे। इस बात पर उपद्रवकारियों को दया आई और उन लोगों ने उसको छोड़ दिया। उसने इससे भी अधिक बहादुरी का कार्य यह किया कि उसको केवल छ दिन अस्पताल रहते बीते थे कि उसको ज्ञात हुआ कि ब्रिगेडियर विलसन साहब दिल्ली जारहे हैं। यह समाचार पाते ही वह ब्रिगेडियर साहब के पास पहुँचा और उनसे प्रार्थना की कि मुझको भी साथ ले चलिये ; परन्तु अब तक जख्म हरे थे, इस कारण ब्रिगेडियर साहब ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। यह होते हुए भी हमने सुना कि वह केवल नौ दिन अस्पताल में रहा और दसवें दिन इस तोपखाने और लड़ाई के सामान के साथ हो लिया, जो मेरठ की फौज के लिये जा रहाथा और हिन्डन पुल पर पहुँच कर फौज के साथ दिल्ली की छावनी में पहुँच गया। और १७ जून तक फौज के साथ रहा। इस बीच में तीन बार उसको सन्निपात हुआ। दो बार रास्ते में और एक बार छावनी में, जहाँ पर वह जरूरी कामों में व्यस्त था। १७ को वह मेरठ वापस किया गया ; परन्तु यह वापसी उसकी इच्छा के विपरीत थी। इन साहब ने १७ वर्ष तक केवल मैगजीन का कार्य किया और जो कुछ माल असबाब था, वह सब-का सब बरबाद कर दिया। अधिक शोक इस बात का है कि उनकी मेम साहब और तीन बच्चे भी इसी विप्लव में काम आये।

चौथी कहानी

डॉक्टर एम० एच० हेबटसन साहब २०-२५ दिन तक हिन्दुस्तानियों के बीच हैरान फिरते रहे और प्रत्येक प्रकार के कष्ट और अपमान उन्होंने इस बीच में सहन किये। तीन-चार बार तो ऐसा हुआ कि वह अपने आप को मृत्यु के निकट समझने लगे। यात्रा और भागने के समय जो-जो कष्ट और मुसीबतें उन्होंने सहीं, उनके सम्बन्ध में स्वयं उनका बयान नीचे दर्ज किया जाता है। आशा है पाठक उसको ध्यान-पूर्वक और शोक के साथ पढ़ेंगे—

'दिल्ली की पहाड़ी पर जो बुर्ज है, उसमें बहुत-सी मेमें एकत्र हो गई थीं। जब डर के लक्षण देख पड़े, तो मैं ब्रिगेडियर ग्रिब्रसन साहब के पास गया और उनसे कहा कि यदि आप गोरी फौज की कुमक के लिये चिट्ठी लिखें, तो मैं उसको लेकर मेरठ जाऊँगा। यह सुनकर ब्रिगेडियर साहब ने तुरन्त चिट्ठी लिखकर मुझको दी। मैं अपने बाल-बच्चों और अन्य मेमों से मिलकर अपने बँगले पर आया और फकीरों को गुदड़ी पहन कर और हाथ-पाँव रंग कर शहर में होता हुआ, नदी के पुल तक पहुँचा; परन्तु दुर्भाग्य से पुल टूटा मिला। लाचार इस अभिप्राय से छावनी की ओर वापस आया कि मैगजीन के निकट जो रास्ता

है उसकी ओर से नदी पार करना चाहिये ; परन्तु इसी बीच तीसरे रिसाले के सवार छावनी में पहुँच गये थे और जाट और गूजर टुकड़ी बनाकर छावनी के निकट के देहात को लूटने के लिये चले आरहे थे। अंगरेजों के बंगलों में तो आग लगाई जा चुकी थी। यह हाल देखकर मैं मेरठ पहुँचने से निराश हो गया और परेड के मैदान से आगे बढ़ा। इसी बीच दो सिपाहियों ने मुझ पर गोली चलाई ; परन्तु मैं बच गया। मैं अभी उस बाग तक ही पहुँचा था, जो शहर से समीप था कि शहर वालों ने मुझे बन्दी कर लिया और मेरे सब कपड़े छीन लिये। मैं वहाँ से बिल्कुल नंगा इस विचार से करनाल की ओर रवाना हुआ कि शायद उन अंगरेजों में से, जो करनाल जा रहे हैं, रास्ते में कोई मिल जाय ; परन्तु मैं अभी केवल एक ही मील गया हूँगा कि दो सिपाही दीख पड़े, जो और अंगरेजों का पीछा कर रहे थे ; परन्तु कोई उनके हाथ न लगा था। वे मेरे पास आये और नंगी तलवारें दिखाकर कहने लगे कि तू फिरंगी है। मैं बहुत ही गिड़गिड़ा कर उनके सामने गिर पड़ा। चूँकि मैं इसलाम धर्म और हिंदी भाषा जानता था ; इसलिए मैंने पैगम्बर मुहम्मद की प्रशंसा करनी आरम्भ की और कहा कि यदि तुम्हारा विश्वास है कि इमाम मेंहदी न्याय के लिये आयेंगे, तो तुम मुझ निरपराध व्यक्ति को न मारो। मैंने दूसरी धार्मिक और नैतिक बातें भी कहीं ; मगर इतने पर भी एक ने तलवार का वार मुझ पर किया। मैं जमीन पर गिर पड़ने के कारण उसका वार बचा गया। चूँकि वे घोड़ों पर सवार थे इस कारण उनकी तलवारें मुझ तक न पहुँच सकीं। मेरी नम्रता-पूर्ण बातों ने कुछ ऐसा

असर किया कि उन्होंने मुझे यह कहकर कि यदि तू पैग़म्बरों के नाम पर प्रार्थना न करता, तो तू भी दूसरे काफिरों की तरह तलवार की धार उतारा जाता, छोड़ दिया। अब मैं बहुत घबड़ा रहा था, मुझ में खड़े रहने की भी शक्ति न थी; परन्तु चलना तो जरूरी था; इसलिए लाचार होकर मैं वहाँ से आगे बढ़ा। एक मील के लगभग चला हूँगा कि मुझे बहुत से मुसलमान दीख पड़े। वे सब मेरी ओर भागकर आये और मुझे देखकर कहने लगे कि यह फिरंगी है, काफिर को मार डालो और मुझ को सम्बोधित करके कहने लगे कि तुम फिरंगियों ने चाहा था कि हम सब को क्रिस्तान कर डालो। यह कहकर मुझको खींचते हुए एक गाँव में ले गये, जो कि एक मील पर या इससे कुछ अधिक दूरी पर था। और मेरे हाथ पीठ से बाँध दिए (मुशकें कस दीं) इसके बाद उनमें से एक व्यक्ति ने कहा कि करीमबख्श, जाओ अपनी तलवार ले आओ। हम इस काफिर का सिर काटेंगे। करीमबख्श गया और जबतक वह तलवार लावे कि गाँव से एक आवाज़ आई "दहाड़ है" "दहाड़ है" आवाज़ के सुनते ही जितने भी मुसलमान थे, सब अपनी अपनी फिक्र करने चले गये। वे तो उधर गये और मैंने इस मौके से लाभ उठा कर बेतहाशा दौड़ लगाई। और इस प्रकार इन दयाहीन मनुष्यों से छुटकारा पाया। रास्ते पर आकर मैं करनाल को ओर भागा; परन्तु रास्ते में मुझ को थोड़े-से लोहार, जो मैगज़ीन में नौकर रह चुके थे, मिलगये और उन्होंने मुझको घेर लिया; परन्तु उनमें से एक व्यक्ति ने मुझको पहचान लिया और कहा कि साहब डरो नहीं, मेरे साथ गाँव में चलो। वहाँ पहुँच कर तुम्हारे खाने-पीने की फिक्र करूँगा। अगर तुम आगे जाओगे, तो उन मुसलमानों के

हाथ से, जो फिरंगियों को लूटने और मारने के अभिप्राय से बाहर निकले हैं, अवश्य मारे जाओगे। उन लोहारों के साथ मैं उनके गाँव गया। उन लोगों ने मेरी बड़ी खातिर की। किसी ने पहनने को धोती दी, किसी ने टोपी। किसी ने दूध पिलाया, किसी ने रोटी दी। मैं यहाँ पहुँच कर यह समझा कि अभी जीवन की कुछ साँसें बाकी हैं। मैं इतना घबड़ाया हुआ था कि मुझ से अच्छी तरह बोला भी नहीं जाता था। उन लोगों ने मुझ को चारपाई दी। मैं लेट गया; पर मुझ को नींद नहीं आई। मैंने उन मनुष्यों से कहा कि मैं डाक्टर हूँ—यह जानकर उन लोगों ने मेरी और भी खातिर की। दूसरे दिन सवेरे गाँव के चौधरी ने मुझ को बुलवाया तो सारा गाँव फिरंगी डाक्टर को देखने के लिये आ डटा। यद्यपि मैं बहुत ही थका था, तथापि गाँववाले जो मुझ से पूछते थे मैं उसका उत्तर पूर्ण-रूप से देता था।

जब उनलोगों ने देखा कि मैं उनके धर्म की जानकारी रखता हूँ, तब तो वे मुझ से विशेष प्रेम करने लगे और मुझे जिन्दा रखने के लिये प्रयत्नशील हुए। वे खुल्लम-खुल्ला कहते थे कि हम शक्ति-भर तुम को जिन्दा रखेंगे। मैं इस गाँव में रहता था कि मैंने सुना कि पड़ोस के किसी गाँव में डॉक्टर वुड साहब मौजूद हैं। उस गाँव का नाम समीपुर है। उस गाँव के एक आदमी ने मुझ से आकर यह कहा कि मेरे गाँव में डॉक्टर वुड साहब नाम के हैं, उनको कुछ औषधियों की जरूरत है। तुम सब हिन्दुस्तानी औषधियाँ जानते हो, कृपा कर बताओ कि उनको क्या दिया जाय। मैंने एक नुस्खा लिख दिया; परन्तु मुझे पता नहीं कि दवा उनके पास पहुँची कि नहीं। मैं उस गाँव में ठहरा हुआ था कि करनल रेली की खबर मेरे पास पहुँची, कि वे

बर्फ़खाने के निकट, जो परेड के मैदान से मिला हुआ है, जख़्मी पड़े हैं। यह सुन कर मैंने गाँववालों से कहा कि साहब बहुत नामीं हैं, अगर तुम उनके लिये खानापानी ले जाओगे, तो सरकार इस सेवा के बदले में तुमको बहुत-सा इनाम देगी। गाँव-वाले सात रोज़ तक बराबर खाना ले गये; परन्तु जब मैं उस गाँव से बिदा हुआ, तो कोई १० रोज के बाद मैंने सुना कि कर्नल साहब को किसी सिपाही ने बर्फ़खाने के निकट कत्ल कर डाला।

मुझे इस बारहदरी में ठहरे अभी थोड़े ही दिन हुए थे, कि यह बात जन-साधारण में भी मशहूर हो गई कि जितने भी अंगरेज मेरठ, अम्बाला और कलकत्ते में थे, वे सब कत्ल कर दिये गए और दिल्ली के बादशाह का शासन स्थापित होगया। अगर कोई व्यक्ति किसी फिरंगी को अपने गाँव या घर में छिपा-कर रखेगा, तो वह मार डाला जायगा और उसका गाँव फूंक दिया जायगा। यह सुनकर गाँव वाले घबराये और मुझे एक आमों के बाग में छोड़ आए। मैं वहाँ पर रात-दिन रहता था। रात को कोई-न-कोई गाँववाला मुझको खाना-पानी दे आता था। ऐसी अवस्था में जो-कुछ मुझ पर बीतती थी, मैं ही जानता हूँ। दिन-भर कड़ी धूप में रहना पड़ता था और रात बिल्कुल अकेले कटती थी। बहुधा आगे-पीछे गीदड़ इत्यादि की कर्णकटु आवाज़ें सुन पड़ती थीं। जो-जो मुसीबतें मैंने झेली हैं, मैं ही जानता हूँ, या फिर ईश्वर। पाँच दिन के बाद इस बाग से गाँव वाले फिर ले गये। और वहाँ भूसे की एक कोठरी में मुझे छिपा दिया। मैं इस अंधेरी कोठरी में २४ घंटे तक रहा। उसके अन्दर की गरमी

का हाल और गरमी के कारण दिल के घबड़ाने की हालत ज़बान से कही नहीं जा सकती।

इसके पश्चात् एक खबर और मशहूर हुई कि फिरंगियों की खोज के लिये सवार नियुक्त हुए हैं। अब यह सलाह ठहरी कि मैं एक भिखमंगे जोगी-फ़क़ीर के साथ कहीं और चला जाऊँ। वह फ़क़ीर मेरे पास आया और मुझसे कहने लगा कि तुम जहाँ कहोगे मैं तुम को पहुँचा दूँगा; परन्तु अब यहाँ पर तुम्हारा ठहरना ठीक नहीं है। उस समय मैं भिखमंगे फ़क़ीर के साथ रवाना हो कर बरसुहा में गया। और रात वहीं पर बसर की। उस फ़क़ीर ने मेरे सब कपड़े अपने दोस्त के घर में जाकर रंगे और मुझ को रुद्राक्ष की माला पहनाई। वह मुझे कई गावों में ले गया। कहीं मुझ को कशमीरी, कहीं दादू-पन्थी, और कहीं जोगी-फ़क़ीर बताता रहा। जिस-जिस गाँव से होकर मैं गुज़रा वहाँ के लोगों ने कुछ-न-कुछ मुझ से पूछा। मैं हिन्दुस्तानी ज्योतिष जानता था; इस कारण जिसने जो पूछा मैंने उसको काफ़ी जवाब दिया। इस कारण मेरी बहुत खातिर होने लगी। कोई पैसा देता और कोई खाना।

इस गाँव से रवाना होकर हम एक दूसरे गाँव में पहुँचे। वहाँ सेवकदास महन्त कबीरी फ़क़ीर रहता था। हम उसके पास गए। मैं उस के धर्म की भी जानकारी रखता था। उस धर्म की ज्यों ही कुछ किताबें मैंने पढ़ीं, वह मुझपर दयालु हो गया। उस के पूछने पर मैंने कहा कि मैं काशमीरी हूँ; परन्तु उसने कहा कि काशमीरी की आँखें भूरी नहीं होतीं। उसने यह भी कहा कि तुम्हारी भाषा, रहन-सहन, ढंग, कपड़े इत्यादि सब ठीक हैं; पर तुम्हारी आँखें तुमको छिपने नहीं देतीं। तुम जरूर फिरंगी हो। मैंने

साफ-साफ कह दिया ; परन्तु चूँकि कबीर की कुछ साखियाँ मैंने उसके सामने पढ़ी थीं और चूंकि मैं उसको कसम दे चुका था ; इस-कारण वह मुझ पर बड़ी दया करता था। मैं उसी फ़कीर के यहाँ था कि एक सिपाही आया और कहने लगा कि मेरे पास अम्बाला की फौज के वास्ते (जो आज-कल लानो में है) कुछ चिट्ठियाँ हैं। मैं उनको वहाँ ले जाऊँगा। मैंने उससे कहा कि मैं डॉक्टर हूँ और चाहता हूँ कि मेरी चिट्ठी फौज के कमान अफ़सर के पास पहुँचा दो। उसने वादा किया और मैंने चिट्ठी लिखकर उसको दे दी। मैंने दिन-भर उस चिट्ठी की राह देखी ; परन्तु न तो उसका जवाब आया और न कुमक ही आई। इस पर मैंने मेरठ जाने का विचार किया। जिस भिखमंगे फ़कीर के साथ मैं यहाँ तक आया था, उसने मेरठ चलने का भी वादा किया। इस गाँव के बहुतेरे आदमी मेरे साथ हरचन्दपुर तक गये। वहाँ पर एक ज़मींदार फ्रांसिस कोहन साहब रहते थे। वे पहले तहसीलदार थे। मेरे साथ बहुत अच्छी तरह पेश आये और मुझ को उन्होंने चिट्ठियाँ दिखलाईं, जो कर्नल न्यूट और कप्तान सालगेड साहब ने लिख कर दी थीं। उनमें लिखा था—इन्होंने हमारी बड़ी मदद की, बड़ी खातिर की और हमें मेरठ तक पहुँचा दिया।

यह चिट्ठियाँ देख कर मैंने भी मेरठ जाने की ठानी। इसी बीच में एक चिट्ठी मेरे नाम मौजा केकरा से आई, जिसमें लिखा था कि राजा झिन्द के सौ सवार कप्तान मैक अन्ड्र की अध्य-क्षता में मेरी राह देख रहे हैं और वे मुझे 'राई' के मुकाम तक, जहाँ पड़ाव पड़ा है, पहुँचा देंगे। कोहन साहब ने अपनी गाड़ी पर सवार कराके 'केकरा' के लिये रवाना कर दिया। यहाँ तक

पहुँच कर कप्तान मैक अन्ड्रू और लेफ्टेनेन्ट मेवो साहब को देख-कर मुझे बहुत खुशी हुई। और जान-में-जान आई।

मैं २५ दिनों तक देहातों, जंगलों और खंडहरों में मारा-मारा फिरा था। अगर मैं हिन्दुस्तानी भाषा न जानता होता और उसको मैं साफ न बोल सकता होता, तो मैं कहीं-न-कहीं जरूर क़त्ल कर दिया जाता।

मैं हिन्दुस्तानी भाषा उतनी ही साफ बोल सकता हूँ, जितनी अंगरेजी। मैं अपनी जान बचने को एक चमत्कार समझता हूँ और समझता हूँ ईश्वर की असीम कृपा। मगर जो-जो तकलीफें और मुसीबतें मैंने झेली हैं, वह बयान नहीं की जा सकतीं।

पाँचवीं कहानी

एक गिरोह, जिसमें बहुत-से अफ़सर और मेमें थीं, दिल्ली से भागने और मेरठ जाने का हाल इस तरह बयान करता है—पहले यह विचार था कि पहाड़ी पर जो बुर्ज है, उसमें किलाबन्द होकर उपद्रवकारियों का मुकाबला किया जाय। मगर यह बात व्यर्थ-सी नजर पड़ी ; क्योंकि इसमें कोई लाभ न था ; इसलिये भागने की बात निश्चित हुई। जब हम लोगों ने प्रस्थान किया तब, ३८ और ७४ रेजिमेन्ट के सिपाही भी रवाना हो गये। थोड़े-से सिपाही अफसरों के पास झन्डे के क़रीब बाक़ी रह गए। मेमों की गाड़ियाँ करनाल रवाना होगईं। अफसरों को सिपाहियों ने यह सलाह दी कि शीघ्र भाग जाना चाहिये ; बल्कि उन्होंने ज़बरदस्ती उनको वहाँ से भगादिया ; इसलिये कि इस स्थान पर भी शहर से उपद्रवकारी आने वाले थे। सायंकाल का समय था, अंधेरा पृथ्वी पर फैल रहा था कि चारों ओर से बन्दूकों की आवाजें आनी शुरू हुईं और छावनी के अधिकांश बँगलों में आग लग गई, जिसका प्रकाश दूर-दूर तक पहुँच रहा था। अब भागने के अतिरिक्त और कोई उपाय शेष न रह गया था। जो अफसर वहाँ बाकी रह गये थे, उन्होंने भी दुबारा प्रबन्ध जमाना व्यर्थ समझ कर स्थान छोड़ दिया ; क्योंकि जो त्राण

बीतता था, वह अधिकाधिक भयंकर होता जाता था। सारांश यह कि वहाँ से बेतहाशा भागे, रात-भर जंगलों की ख़ाक छानते रहे। कभी थक कर ज़मीन पर लेट जाते थे कि शायद नींद आ जाय, कभी प्राणों के भय से उठ बैठते थे। इसी प्रकार बड़े कष्टों से रात कटी। सुबह होते ही उपद्रवकारी सिपाही उनके आगे-पीछे मडराते दीख पड़े; परन्तु ईश्वर को अनेक धन्यवाद है कि उनको वह स्थान न मिल सका, जहाँ वे साहब लोग थे। जब कोई दीख न पड़ा, तो विवश होकर सिपाही ढूँढने के लिए आगे बढ़े। ये अफ़सर लोग-जहाँ ठहरे थे, उसके आस-पास के लोगों के बहुत कृतज्ञ हैं; क्योंकि गाँववालों ने उनकी बड़ी सेवा की थी और बहुत कुछ आराम पहुँचाया था। किसी ने खाना खिलाया और किसी ने अपने घर में छिपा कर आश्रय दिया। रात-भर जो साहब लोग बिछुड़े रहे थे, वे आ मिले और जो रात भर साथ रहे थे, सुबह को बिछुड़ गए। गाँव वालों ने उन अङ्गरेजों को, जिनकी रक्षा का उन्होंने भार लिया था, जमुना नदी के एक नाले को पार कराकर जंगल में एक सुरक्षित स्थान पर छिपा दिया और तीसरे पहर उनको आकर समाचार दिया कि अंग्रेजों का एक गिरोह, जिसमें मेमें भरी हैं, निकट के किसी स्थान में ही ठहरा हुआ है। यह गिरोह वह था, जो काश्मीरी दरवाजे से भागा था और जब वहाँ शान्ति के लक्षण न दिखाई पड़े, तो मेमों को तोप की पेटी पर सवार करा कर छावनी भेजा था। आगे उपद्रवकारियों ने उनको मार्ग में लूट लिया था; बल्कि उन पर गोलियाँ भी चलाई थीं। उसके बाद ये लोग खाई में उतर कर दूसरी ओर से चढ़ कर भाग निकले थे। इन्हीं में से

एक मेम के कन्धेपर गोली का एक जख्म भी लगा था। सारांश यह कि वहाँ से भाग कर यह गिरोह भी सारी रात परेशान रहा। कई बार सिपाहियों के हाथ से बड़ी कठिनाई से बचे ; बल्कि किसी-किसी समय तो उपद्रवकारी सिपाही इन लोगों की खोज में अत्यन्त निकट पहुँच गये ; मगर ईश्वर की लीला कि ये लोग उनके अत्याचारी पञ्जों में फँसने से बाल-बाल बच गये।

सारांश यह कि दोनों गिरोह इकट्ठा होकर चले और एक को दूसरे की भेंट से कुछ ढाढ़स बँधा। अब संख्या बढ़ गई थी ; इसलिए अपनी शक्ति पर भरोसा करके आगे बढ़े। ये लोग दो या तीन मील तक जमुना नदी के किनारे-किनारे चलते रहे। इसके बाद एक नाले पर पहुँचे, जिसका पार करना अत्यन्त कठिन था। वह गर्दन तक गहरा था और इस वेग से बहता था कि पाँव उखड़ जाते थे। थोड़ी दूर तक वे सब बहते हुए चले गये। अन्त में बड़ी कठिनाई से पैर जमा-जमा कर दूसरे किनारे तक पहुँचे।

अब शाम हो गई थी और नाले में घुसने के कारण बड़ी सर्दी लग रही थी। दूसरे दिन सुबह को फिर गाँववाले उनके मित्र बने और ऐसे स्थान पर, जहाँ बहुत सघन वृक्ष थे, ले जाकर कहा कि यहाँ रहना उचित नहीं है; क्योंकि उपद्रवकारी सिपाहियों के झुंड-के-झुंड उनके पीछे पड़े हैं। यहाँ से जब वे चले, तो गूजरों के झुंड के हाथ में आ फँसे, जिनके नीच विचार शीघ्र ही प्रकट हो गये। चूंकि इन लोगों की बन्दूकें इत्यादि पानी में भीग गई थीं ; इसलिये गूजरों ने घोर नीचता का व्यवहार किया। उन्होंने इन लोगों के सब हथियार ही नहीं छीने ; बल्कि कपड़े तक उतरवा लिये और

सब माल-मता लेकर भाग गये। ये दुष्ट गूजर इन लोगों के प्राण तक ले लेते यदि एक साधु समझा-बुझा कर उन को ऐसा करने से न रोकता। अब उनके पास लज्जा ढाकने के अतिरिक्त और कोई कपड़ा शरीर पर न था। इसी दशा में सूरज की गर्मी में जलते-भुनते एक गाँव में पहुँचे। यह गाँव ब्राह्मणों का था। इसमें एक सन्यासी की कुटी में जाकर आश्रय लिया और तीन दिन तक वहाँ ठहरे रहे। यहाँ अपने आश्रयदाताओं के हाथों बहुत आराम पाया। उन लोगों ने असीम सेवा-सुश्रूषा की और इनके जख्मों की मरहम-पट्टी के लिये एक जर्राह का भी प्रबन्ध कर दिया और जो दवा गाँव में मिल सकती थी, उन तक पहुँचाई। इस गाँव से वे एक दूसरे गाँव में उसके जमींदार की इच्छानुसार चले गये। यह जमींदार जर्मन जाति का था। वहाँ इन्हें यहाँ से अधिक आराम मिला। रहने के लिये मकान और खाने-कपड़े का अच्छी तरह प्रबन्ध कर दिया गया। इस रात को अधिक ढाढ़स बँधा; क्योंकि मेरठ के सवारों का एक रिसाला, जिसको चिट्ठी भेज कर उन्होंने बुलाया था, उनके पास आगया। ज़िमींदार ने सवारियों का प्रबन्ध कर दिया और आठवें दिन ये सब लोग अपनी असली सूरतों में मेरठ पहुँच गए।

छठी कहानी

डाक्टर बालफोर साहब दिल्ली से अपने भागने का हाल इस प्रकार लिखते हैं—

'जब यह बात तय हो गई कि अब दिल्ली छोड़ देनी चाहिए तो लीबास साहब ने अपनी बग्घी मुझ को दी। मैंने अपनी बहन मिस स्मिथ को अपने पास बैठाया। और रास्ते से लेफ्टेनेन्ट टॉमस इन्जीनियर और मेम डानिस को फ्रेजर साहब के बच्चे के साथ, जो इस समय उनकी गोद में था, बैठाकर हमलोग करनाल की ओर रवाना हो गये। लेफ्टेनेन्ट टॉमस साहब ने कहा कि यह बात अधिक अच्छी होगी यदि हम पहले नहर को पार करके उस थाने पर चलें, जो रास्ते में है। वहाँ पहुँच कर जिधर की सलाह होगी, रवाना हो जायँगे। हमने ऐसा ही किया और छोटे थाने तक पहुँचे। दूसरे दिन सवेरे के वक्त ही जब हम चलने की तैयारी कर रहे थे, मौजा ओहद का जाट जमींदार हमारे पास आया। उसने पूछा कि दिल्ली के कत्ल और लूट का हाल वहाँ पहुँचा है या नहीं। उसने यह भी कहा यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं तुमको शान्ति के साथ सुरक्षित रख सकता हूँ। मैंने सब को सलाह दी कि इस को स्वीकार करना चाहिये। रात्रि के समय हम सब उसके साथ उसके गाँव गये और वहाँ उसने

हमको चार-पाँच रोज तक रखा और हमारी बड़ी खातिर की। अन्तमें जब किसी फौज के आने की खबर न सुनी, तो उसने हमको यह सलाह दी, कि नहर के किनारे-किनारे करनाल चलना मुनासिब है। उसने हमको रास्ता बताया और उस गाँव के उपद्रवकारियों से हमको बचाया और हमारी रक्षा का प्रबन्ध किया। उसने हमारी इतनी सेवा की कि मुझको डर है कि हम लोग उसको इसका बदला न दे सकेंगे।

सारांश यह कि हम अत्यन्त सुरक्षित अवस्था में करनाल पहुँच गये। श्रीमान्लेफ्टेनेन्ट गवर्नर साहब यह बात सुन कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे कि मुल्क के इस भाग में, जिससे होकर हम गुज़र रहे थे, अधिकतर मनुष्य अंगरेजी सरकार के शुभचिन्तक थे और ऐसे उपद्रव के समय भी दृढ़ प्रतिज्ञ बने रहे। सिर्फ गूजरों की जाति जरूर कभी-कभी उपद्रव करती थी। ये गूजर उपद्रव-कारी बड़ी सड़क के आस-पास रहते थे।'

सातवीं कहानी

एक मेम साहब, जिनका हवाला बालफोर साहब की चिट्ठी में आचुका है, अपने भागने का हाल इस प्रकार लिखती हैं—

'११ मई सोमवार के दिन सवेरे के समय मैं एक मित्र से मिलने गई, जो मैगज़ीन के निकट रहते थे। जब पहले-पहल यह समाचार आया कि उपद्रवकारियों का गिरोह मेरठ से आरहा है, तो मुझ को और दूसरी मेम साहबों का यह सलाह दी गई कि हम सब मैगज़ीन में जाकर रहें; परन्तु मैं वहाँ न गई और अपनी माता के घर में, जो निकट ही था, चली गई। और उनसे इस झगड़े का हाल बयान किया और नौकरों से कहा कि जा कर इस झगड़े की ठीक-ठीक खबर लाओ; परन्तु उस समय उन सबने कहा कि इस समय यहाँ पर कुछ भी खटका नहीं है और यहाँ पर किसी तरह की खराबी पैदा नहीं हो सकती; क्योंकि दिल्ली की रक्षा का प्रबन्ध बड़ी सुन्दर रीति से किया जा रहा है। इसी बीच और भी कई मेमें आकर जमा हो गई। आधे घण्टे के लगभग बीता होगा कि नौकर ने आकर शोर मचाया कि उपद्रवकारी आ गये और मकानों को लूट रहे हैं और गिरजाघर तक पहुँच गये हैं। गिरजाघर हमारी कोठी के अत्यन्त निकट था; इसलिये अब भागना भी असम्भव हो

गया। हमारे नौकरों ने हमको यह सलाह दी कि नौकरों के मकान में जाकर छिप रहें। इस सलाह के अनुसार हम सब एक स्थान में जाकर छिप रहे। हमारे छिपने के थोड़ी देर बाद दो-सौ सवार हाते के अन्दर आ गये और उस घर के निकट आकर, जिसमें हम सब छिपी हुई थीं, खड़े हो गये और नौकरों से पूछा कि साहब लोग और मेमें कहाँ हैं। तुम अपने प्राणों का भय न करो। हम तुम में से किसी को न मारेंगे; लेकिन हमारा यह विचार है कि दिल्ली में जितने ईसाई हैं, उन सब को क़त्ल कर डालें। नौकरों ने जवाब दिया कि सब भाग गये, हमको ज्ञात नहीं कि कहाँ गये। अगर तुम्हारी यह धारणा हो कि बँगले में हैं, तो जाकर स्वयं ढूँढ़ लो। इस उत्तर से उनको कुछ सन्तोष हुआ और वे वहाँ से बाहर जाकर अङ्गरेजों की खोज में लग गये।

थोड़ी देर के बाद ७४ वीं रेजिमेन्ट के ६ सिपाही और आगये। उनको वह घर, जहाँ हम सब छिपे थे, मालूम हो गया। वे खूब ठठाकर हँसे और बन्दूकें दिखाकर कहा कि हम तुम को मार डालेंगे। हमने उनकी बहुत खुशामद की और कहा हमें मत मारो। इस पर उन्होंने कहा - अच्छा बाहर आओ और हमारे साथ चलो, फिर देखना हम क्या करते हैं। हम बाहर निकले और उनके साथ हो लिए। वे हम सब को गारद में जहाँ वे सब रहते थे, लेगये। और अफसरों की लाशें दिखाकर कहने लगे कि देखो, यह सब इस वास्ते मारे गये हैं कि कमान्डर इन-चीफ साहब ने हमको धर्म-भ्रष्ट करने का विचार किया था।

इसके पश्चात् अफसरों ने देखा कि हम नीचे सिपाहियों के पास खड़े हैं। वे जल्दी से दौड़कर हमारे पास आ गये, और

सिपाहियों को हटा कर हम से कहा कि ऊपर जाओ। हम सब वहाँ गये। वहाँ पहुँचकर हमने देखा कि बहुत से अफसर उपस्थित हैं। वहाँ हम लाग दस बजे तक भूख प्यास की यंत्रणाएँ सहते रहे।

मेजर ऐबट साहब ने झंडावाले बुर्ज पर कहला भेजा कि तोप की पेटियाँ भेज दो, तो उनपर मेम साहबों को सवार करके अपने सिपाहियों की रक्षा में बुर्ज तक पहुँचा दें, इस कारण कि यहाँ का कुछ भी सहारा नहीं है और बुर्ज इससे अधिक सुरक्षित स्थान है। थोड़ी देर में पेटियाँ तोपों के साथ आईं। उनके साथ ३८ वीं रेजिमेन्ट के कुछ सिपाही थे। मेजर ऐबट साहब हम सब को उनपर सवार कराके, आप स्वयं अपनी कम्पनी लेकर आगे बढ़े और आज्ञा दी कि पेटियाँ उनके साथ आवें। ३८ वीं रेजिमेन्ट के सिपाही उस समय तक चुप-चाप खड़े रहे, जब तक मेजर साहब कशमीरी दरवाजे से बाहर नहीं हो गये। ज्योंही वे बाहर हो गए, त्योंही सिपाहियों ने दरवाजा बन्द कर लिया और हमसे कहा कि अगर तुम लोग अभी इस पर से न उतर आईं, तो हम तुम सब को मार डालेंगे। यह सुनतेही हम सब पेटियों पर से उतर आईं; परन्तु मेरी बहन न उतर सकी; क्योंकि उसकी गोद में बच्चा था। उसने सिपाहियों से कहा—थोड़ा ठहरो, मैं बच्चे को किसी को देकर उतरती हूँ; परन्तु जब उन्होंने पुनः उतरने को कहा, तो उसने बच्चे को मेरी गोद में डाल दिया और आप झट कूद पड़ी। इसी बीच में ५४ वीं रेजिमेन्ट का एक ड्रम्मर (फौजी ढोल बजाने वाला) आ गया। उसने मेरा हाथ पकड़

कर कहा कि यदि जीवन से प्रेम है, तो मेरे साथ चलो। वह ज़बरदस्ती एक खिड़की से मुझे सदर बाज़ार ले गया। रास्ते में मैंने बन्दूकों की आवाज़ें सुनीं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि सिपाही उन अफसरों का, जो भाग कर जाना चाहते हैं, पीछा कर रहे हैं, और मार रहे हैं। थोड़े से अफसर मारे जा चुके हैं। मेरा साथी भी मुझको कप्तान बर्ड साहब के बँगले पर ले गया। और मुझसे कहा कि यहाँ एक और मेम साहब हैं, वे तुम्हारी देखरेख करेंगी ; परन्तु पीछे से ज्ञात हुआ कि वे भी झंडेवाले बुर्ज पर चली गई हैं। तब मैंने कहा कि मुझे भी पहुँचा दो। बहुतेरे सिपाही मुझे देखकर हँसते थे ; परन्तु उनमें से एक ने मुझसे कहा कि चलो मैं तुमको पहुँचा दूँगा। उसने अपनी बात पूरी की।

मैं अधिक-से-अधिक दस मिनट बुर्ज में रुकी हूँगी कि वहाँ से भागने का पक्का इरादा हो गया। सारे-के-सारे सिपाही उपद्रवी हो गये थे। उनमें से कोई अपने अफसरों की आज्ञा न मानता था। इस कारण जिसके सींग जिधर समाये, वह उधर चला गया। डॉक्टर बालफोर साहब ने मुझपर बड़ी कृपा की और अपनी गाड़ी में मुझे जगह दी। जितनी जल्दी सम्भव हुआ, हम ने सड़क छोड़ दी और नहर के किनारे-किनारे भागा-भाग २५ मील तक चले गये। २५ वें मील पर हम थोड़ी देर तक ठहरे और एक घंटे तक आराम करके फिर वहाँ से रवाना हुए और एक चौकी पर पहुँचे, जो यहाँ से ५ मील दूर थी, बाकी रात खुले मैदान में कटी। इस स्थान के निकट एक गाँव था। यहाँ से नहर का एक ठेकेदार आया और बोला कि मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

सबेरे उसने हम लोगों को दूर ले जाकर एक बाग़ में रखा और कहा कि दिनको यहाँ रहा करो। रात्रि में वह उपद्रवकारियों के भय से हम लोगों को अपने घर ले जाया करता था। वहाँ हम कोठे पर रात काटते थे। छ दिन के बाद उसके पड़ोसी देहातियों ने उससे कहा कि इन लोगों ने तुझको बहुत-सा रुपया दिया होगा, नहीं तो तू क्या इन लोगों की इतनी रक्षा करता। अगर हमको भी तू कुछ भाग उस रुपये में से दे, तब तो ठीक है, नहीं तो रात्रि में आकर हम इन सबको मार डालेंगे। हमारे रक्षक ने यह समाचार सुनकर हम से कहा कि अब यही ठीक है कि तुम सीधी करनाल चलो जाओ। सुनते हैं कि वहाँ कुछ सरकारी फौज आ गई है। वह रास्ते में हमारी रक्षा के अभिप्राय से करनाल तक हमारे साथ गया। कमाण्डर-इन-चीफ़ साहब ने उसकी सेवा के बदले उसको १०००) रुपया इनाम दिया। जो बच्चा मैं गोद में लाई थी, वह दो रोज के अन्दर मर गया। यह भी समाचार मिला है कि मेरी माता भी सख़्ती और मेहनत के कारण मर गई।

उपद्रवकारी उस गिरोह के पीछे, जिसको हमने अपने पीछे छोड़ा था और जिसमें मेरी बहन भी थी, आ गये; परन्तु ईश्वर की कृपा से वे बच गए। वे कभी झाड़ियों में छिपते थे, कभी उन झाड़ियों में बैठे-बैठे लेटे-लेटे चलते थे। काँटे जो शरीर में चुभ गये थे, उससे लहू बह रहा था।

आठवीं कहानी

डॉक्टर ह्यूड साहब की मेम ने भी अपनी उन विपत्तियों तथा कष्टों का हाल प्रकाशित किया है, जो दूसरे अंग्रेज़ों के साथ देहली से कर्नाल तक भागने में उन्हें झेलने पड़े थे।

वह कहती हैं कि डॉक्टर ह्यूड साहब जब ज़ख्मी हो गए तो मैं नङ्गे पैर उनसे मिलने को दौड़ी। इसके पहले मैंने उनसे कहला भेजा था कि पहाड़ी के बुर्ज पर जा एक सुरक्षित स्थान है वहाँ चले जावें। मैपल साहब की मेम जो इस विपत्ति में मेरे साथ थीं, एक मित्र की कृपा से उनको बग्घी पर जगह मिली। मैं भी उनके साथ सवार हो गई। जब मैं ह्यूड साहब के पास पहुँची, तो वहाँ एक अस्पताल की डाली रखी हुई थी। मैंने इस विचार से कि डाली में साहब को आराम मिलेगा और वह अच्छी तरह सफर कर सकेंगे, उसमें साहब को सवार करा के अपने साथ लिया। हम थोड़ी ही दूर गये होंगे कि कहारों ने जाने से इन्कार कर दिया। तब यहाँ से उनको पालकी गाड़ी में, जो उनके साथ आई थी, सवार करा कर करनाल रवाना किया और मेजर पिटर्सन और मेपल साहब को यहाँ से विदा किया। अब हम सब पीछे परेड से गुज़रे। रास्ते में तीन मर्तबा डॉक्टर साहब को सवारी बदलनी पड़ी और इसमें देर लग गई;

इस कारण दूसरी औरतों और अंग्रेजों से हम पीछे रह गये और इन सब के बाद दिल्ली से रवाना हुए। हम केवल दस मील आगे बढ़े थे कि देहाती आ गये और हमको रोकना चाहा। इतने में हमारे साईस ने हम से कहा कि अगर आप आगे जायँगी, तो मारी जायँगी; क्योंकि देहाती रास्ते में आप की बाट जोह रहे हैं। यहाँ भी हमको कठिनाई सामने दिखाई पड़ती थी; क्योंकि हमारे घोड़े उन्होंने पकड़ लिए थे और नंगी तलवारें साईस के सिर पर तनी हुई थीं और आगे का भी भय था। खैर, बड़ी कठिनाई से यहाँ से तो किसी प्रकार बच गए। अब विचार किया कि कम्पनी बाग लौट चलें और वहाँ दूसरे दिन तक छिपे रहें; और ऐसा ही किया भी। मालियों ने हमको वचन दिया कि हम तुमको आश्रय देंगे। बहुत देर के बाद एक झुण्ड लाठियाँ लेकर हमारे पास आया और कहा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, दे दो। इनका विरोध करना व्यर्थ था; क्योंकि हम केवल दो अनाथ स्त्रियाँ और वह जंगलियों का पूरा झुण्ड-का-झुण्ड था। डॉक्टर साहब को ऐसा गहरा जख्म लगा था, कि वह उठना तो क्या, बात भी न कर सकते थे।

हम दोनों के पास एक-एक सन्दूक़ जेवर और जवाहरात का था। इनके अतिरिक्त मेरे पास सौ रुपये नक़द भी थे, जिसको बचाने के विचार से साथ लाये थे; परन्तु अब यह विचार व्यर्थ था; क्योंकि उन्होंने सब छीन लिया। इसके अतिरिक्त मैपल साहब की मेम का गाउन, टोपी, पहनने के कपड़े और दो रक्त सिंचित चादरें भी ले लीं। बग्घी भी तोड़ डाली और घोड़ों पर सवार होकर नौ-दो ग्यारह हो गए। इनके बाद भी कई मर्तबा लुटेरे

आये और उस वक्त तक पीछा न छोड़ा, जब तक अच्छी तरह से यह न देख लिया कि हम बिल्कुल निर्धन और भिखमंगे हो गए हैं।

अब हमारे पास एक कौड़ी भी बाकी न रही। रात को लगभग एक बजे मैं और मैपल साहब की मेम, डॉक्टर साहब को एक पेड़ के नीचे छोड़कर किसी गाँव की खोज में बाहर निकलीं। बड़े प्रयत्न और आग्रह करने पर एक जमींदार हमको अपने साथ ले गया। उसने हमको रहने को मकान और खाने को दूध-रोटी दी। इस रोज़ शाम को हम करनाल रवाना हो गये। इसी प्रकार रात ही-रात में सात-सात मील बड़े कष्टों में यात्रा करते थे; क्योंकि एक ज़ख्मी भी हमारे साथ था। गाँव-गाँव से रोटी माँग कर खाते थे और जमीन पर सो रहते थे। कुछ स्थानों पर तो लोग मेहरबानी से पेश आते थे; मगर अधिकांश स्थानों पर लोग ताना देते थे और बुरी तरह से पेश आते थे, यहाँ तक कि कड़ी धूप के समय हमको कोई छाया में भी बैठने न देता था। इसी प्रकार हमने छः दिन सहस्रों कष्टों को झेलकर काटे। इस बीच में दिन को, धूप के समय, किसी पेड़ या पुल के नीचे रहते थे। प्रत्येक समय प्राणों का भय लगा रहता था। पानी भी न मिलता था; मगर इस धारणा से हृदय को शान्ति और आश्वासन मिलता था कि बादशाह के सिपाहियों के हाथ से सम्भवतः बच जायँ।

छठे दिन बालगढ़ पहुँचे। यह गाँव रानी मंगला देवी का है। यहाँ रानी साहिबा ने हमारी बड़ी सहायता और आदर-सत्कार किया और कहा कि हम तुम्हारी रक्षा करेंगी; मगर

दूसरे ही दिन, इन आशाओं पर पानी फिर गया। रानी के आदमी हमारे साथ रानी का यह व्यवहार देखकर अत्यन्त रुष्ट हो गए और उन्होंने रानी को यह धमकी दी कि अगर तुम इनको यहाँ से रवाना न करोगी, तो हम तुम्हारा गाँव लूट लेंगे। यह बात हमारे लिये अत्यन्त शोकजनक और दुःखदायक थी; किन्तु कोई इलाज न था। विवश होकर यह बात निश्चय की कि यहाँ से चल देना चाहिए। इसी बीच में सान्त्वना देने वाली एक और बात पैदा हुई; अर्थात्—मेजर पिटर्सन साहब आहत रूप में पैर में छाले पड़े हुए और लुङ्गी बाँधे हुए आ पहुँचे। मेजर साहब रास्ते भर हमारा पता लगाते हुए चले आते थे। यह भेंट यद्यपि बहुत सन्तापप्रद थी; परन्तु इससे दुख भी बहुत हुआ कि हमसे उच्च पदवी वाले व्यक्तियों के पास कपड़े तक पहनने को न रहें और हिन्दुस्तानी लोग कपड़ों में बसर करें।

सूरज डूबने के पश्चात् हम गाँव से निकाले गए। सड़क का मार्ग छोड़कर दो-तीन रात्रि तै किये। इसी चिन्ता में हम इतना अधिक थक गये थे, कि अन्त में एक जमादार से अनुनय-विनय की और कहा कि हमको कहीं बैठने दो और कुछ खाने को ला दो, हम कल यहाँ से चले जायंगे। इस जमीदार ने हमारी बड़ी खातिर की, खाना भी बहुत सा दिया, सोने के लिये चारपाइयाँ भी दीं। दूसरे दिन प्रातः ही चार बजे हम वहाँ से रवाना हो गए। एक गाँव वाले ने एक चारपाई और कहार मेरे पति के लिये दिये। मेरे जूते घिस गये थे। मेजर पिटर्सन के जूते फट-फटाकर गायब हो गये थे। मैं इस दशा में गर्म-गर्म रेत और काँटेदार मैदानों में नंगे पाँव चलती थी। अन्त में हम

थाना कोली के निकट पहुँचे। यहाँ हमारे साथ अत्यन्त मेहरबानी और रिआयत के साथ लोग पेश आए। एक मनुष्य ने हमारी करुण दशा से दयार्द्र होकर अत्यन्त स्वादिष्ट कढ़ी पकाई और दूसरे दिन प्रातःकाल हमारी सवारी के लिये दो घोड़े, एक खच्चर और एक गधा तहसील कसौनी तक जाने के लिये दिया। वहाँ पहुँच कर हमें सन्तोष हुआ और हम समझे कि अब हम सुरक्षित हैं। दूसरे दिन करनाल से हमारे वास्ते शिकरम आई और महाराजा पटियाला के सिपाही रक्षा के वास्ते साथ आये। हम सब वहा से चलकर २० मई को करनाल पहुँचे। यहाँ पहुँच कर हम सीधे रिग्बी साहब के मकान पर गये और सच यह है कि उन्होंने हम निर्धन और आश्रितों के साथ ऐसा उत्तम व्यवहार किया, जो एक सगे और सच्चे ईसाई के लिये सर्वथा उचित था। हमें उन्होंने इतना आराम पहुँचाया कि उनका ऋण हम कभी न भूलेंगे। एक सप्ताह से अधिक हम करनाल में ठहरे रहे। इसके बाद फिर यात्रा प्रारम्भ की। करनाल से अम्बाला गए और अम्बाला से डाक-कार्ट पर सवार होकर कालका पहुँचे। मार्ग में बहुधा गाड़ी से उतर कर स्वयं गाड़ी गर्म बालू में खींचनी पड़ती थी। डॉक्टर साहब के जख्म को भी हमने स्वयं ग्यारह दिन तक धोया और बाँधा। जख्म इतना अधिक खराब और गहरा हो गया था कि देखकर बड़ा दुःख और निराशा होती थी। गोली से दाँतों के जबड़े उड़ गये थे। ग्यारह दिन के बाद एक डॉक्टर साहब ने इनके जख्म की परीक्षा की थी।

हमारी भगदड़ अत्यन्त ही कष्टप्रद थी। हमने इसमें असीम कष्ट उठाए, सहस्रों विपत्तियाँ झेलीं और अत्यन्त कटु तथा

मनुष्यता-हीन ताने सहन किये। जितना भी सामान था, सब लुट गया। हमारे और मैपल साहब की मेम के पास जवाहरात की भाँति बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ थी। कुछ हमने स्वयं खरीदी थीं, कुछ मित्रों ने भेंट में दी थीं; परन्तु इन दुष्ट उपद्रवकारियों ने कुछ भी ख़याल न किया और सब लूट ले गये। हमने पानी के विषय में भी कठोर आपदाएँ झेलीं। पैदल चलने के कारण हमें प्यास बहुत लगती थी और जब हमारे पास का पानी समाप्त हो जाता था, तो लाचार होकर झीलों और तालाबों का गँदला और कीड़े पड़ा हुआ पानी पीना पड़ता था। कूओं से भी खींच कर पीते थे। यद्यपि वह खारा होता था, तथापि पीना पड़ता था। यहाँ मैं यह भी बयान कर देना चाहता हूँ, कि कर्नल इव्ली साहब की डोली हमसे आगे-आगे जाती थी; किन्तु वह कहाँ रखदी गई, यह हमें मालूम न होसका। यह बात हमारी सामर्थ्य के बाहर थी, अन्यथा हम प्रयत्न करके उनको अपने साथ ले लेते और उनको अकेला क़त्ल होने को न छोड़ देते।

नवीं कहानी

मोहनलाल, जिसने काबुल में सरकारकी सेवा की थी, दिल्ली में था। जब वहाँ पर उपद्रव का आरम्भ हुआ, तो वह अपने प्राण बचाकर वलीदादखाँ के यहाँ जा छिपा। परन्तु, वलीदादखाँ ने उसको बालागढ़ के किले में ४२ दिन तक क़ैद रखा। उसके पश्चात् वह वहाँ से भाग कर अगस्त मास के प्रथम सप्ताह में मेरठ पहुँचा। वह अपना वृत्तान्त एक पत्र में—जो उसने हाजिंस साहब के पुत्र के नाम लिखा था—इस प्रकार लिखता है—

'हाजिंस साहब १० मई शनीवार के दिन दिल्ली पहुँच गए। हम दोनों मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और उन चीज़ों के भेजने की तदबीर की, जो हमने राजा साहब के लिये खरीदी थीं। शाम के समय मैं उनको अपनी गाड़ी में सवार कराके शहर के विशालकाय भवन दिखाने के अभिप्राय से लेगया। रात बड़ी प्रसन्नता से कटी। तुम्हारी और हेनरी की शिक्षा के सम्बन्ध में बहुधा बातचीत होती थी। यह बात बहुधा कही जाती थी कि वह छोटी अवस्था के होते हुए भी अपने दफ्तर का कार्य कितने सुचारु रूप से करता है।

११ मई की मनहूस सुबह आई। एतवार के सवेरे तक सब प्रकार शहर में अमन-चैन था। उपद्रव का कोई चिन्ह तक न था।

कलकत्ते के समाचार-पत्र भी हमारे यहाँ आये। अकस्मात् यह भयानक समाचार सुनकर कि मेरठ के उपद्रवकारी यहाँ भी आ पहुँचे, निराशा की एक लहर दौड़ गई। यह सुनकर कि वे अत्यन्त निर्दयता से ईसाइयों को कत्ल कर रहे हैं और उनके घर जला रहे हैं, हमें और भी अधिक डर लगा। सवारों के पश्चात् पैदल सिपाही भी आगये और वे भी दिल्ली की फौज के साथ सम्मिलित होकर लोगों के कत्ल करने और खून की नदियाँ बहाने में लग गये। जब मैं उस भयानक दिन का स्मरण करता हूँ, तो मेरा सारा शरीर काँपने लगता है। लगभग २ बजे दिन के समय चार सिपाही बन्दूकें लिये हुए दरवाजे के सामने आकर खड़े होगये। यद्यपि दरवाजा बन्द था, तथापि शहर के बदमाशों के बहकाने से उन लोगों ने गालियाँ देना आरम्भ कर दिया और कहा कि यह घर किसी ईसाई का है और इसमें एक फिरंगी आकर ठहरा है। हम मकान के मालिक और फिरंगी दोनों ही को कत्ल करेंगे। हमारे नौकरों और मुहल्ले वालों ने कहा कि यह घर किसी भी ईसाई का नहीं है और न कोई फिरंगी ही यहाँ आकर ठहरा है। बहुत ही नम्रता और खुशामद और कुछ रुपया देने के पश्चात् वे बदमाश चले गये।

जब तक यह तकरार होता रही और वे सिपाही चले न गये, तब तक मैं और तुम्हारे पिताजी एक तंग और अंधेरी कोठरी में, जिसके अन्दर जलाने की लकड़ियाँ रखी थीं, छिपे बैठे रहे। रात्रि को हाजिम साहब को तुम्हारे चाचा के घर इस अभिप्राय से भेजवा दिया गया कि यदि वे सिपाही दूसरी बार आवें, तो साहब को न पा सकें।

१२ मई को उपद्रवकारियों ने शहर के बदमाशों से मेरे सरकारी सम्बन्ध का हाल सुन कर फिर आक्रमण किया। पहले तो उन्होंने आस-पास की दूकानों को लूटा। फिर वे ज़बरदस्ती मेरे घर में घुस आए। उन्होंने सब माल व असबाब लूट लिया और मुझको बन्दी कर लिया और कहा कि इंग्लैण्ड हो आने के कारण तू हिन्दू नहीं रहा। और हाजिस साहब की रिश्तेदारी के कारण तू मुसलमान भी नहीं रहा। इसके अतिरिक्त तू अंग्रेज़ी सरकार का जासूस भी है। इसलिये तुझे एक बड़ी रकम पेनशन में मिलती है। इस कारण हम तुझको मार डालेंगे—यहाँ तक कि एक ने बन्दूक की नली मेरे सीने पर रख दी। परन्तु औरतों के रोने धोने, नम्रता और खुशामद और हिन्दू मुसलमान पड़ोसियों के समझाने-बुझाने से कोतवाल शहर ने, जो अकस्मात् उधर से गुज़र रहा था, मेरे कत्ल को रोक दिया और कहा कि जाँच के बाद इसको मारेंगे।

इस घटना के पश्चात् मैं छिप गया। कभी कहीं रहता और कभी कहीं। हाजिस साहब भी चाचा के घर से मेरी मौसी के घर चले गये और थोड़े दिन वहाँ रहे। अब लोगों को सन्देह हुआ कि हाजिस साहब वहाँ छिपे हैं। अब हाजिस साहब और हम लोगों की सलाह हुई कि यहाँ से भाग चलना, यहाँ घर में बन्दी होने और क़त्ल कर दिये जाने से कहीं बढ़कर है। रात को आठ बजे कपड़े बदल कर साहब इस अभिप्राय से रवाना हुए कि लाहौरी दरवाज़े से किसी तरह बाहर होकर करनाल रवाना हो जायँ; परन्तु उनका पथ-प्रदर्शक बयान करता है कि दुर्भाग्यवश उपद्रवकारियों ने उनके रंग ढंग से उनको पहचान लिया और

बन्दी कर लिया। बात-चीत के पश्चात् सारा भेद खुल गया कि वे हिन्दुस्तानी वेष-भूषा में अंगरेज हैं। अन्त में हाजिस साहब ने स्वयं मान लिया कि वे कौन हैं, किसके पास और कहाँ जाते हैं। इसी सिलसिले में उन्होंने मेरा नाम भी बतला दिया।

सारांश यह कि साहब तो वहीं कत्ल हो गए और वे अब मुझ को ढूँढ़ने में लगे।

मेरे दोस्तों ने खिज़िर सुल्तान शाहज़ादे से सिफारिश करके आज्ञा ले ली, कि मै ताल्लुकेदार वलीदादखाँ के साथ चला जाऊँ। वलीदादखाँ बालागढ़ का ताल्लुकेदार था। बालागढ़ बुलन्दशहर से दो मील के फासिले पर स्थित है। खाँ सरकार से पेन्शन पाता था और नमक-हलाल रिआया में से था और १० जून तक राजभक्त बना रहा।

वलीदादखाँ की सवारियाँ भी दिल्ली से जा रही थीं। मैं भी उन्हीं के साथ एक अलहदा पालकी पर बैठ कर शहर से बाहर निकला। खाँ ने दिल्ली में मुझसे यह वादा किया था कि वे मुझको आगरा तक पहुँचा देंगे और सरकार के राजभक्त बने रहेंगे; परन्तु थोड़े से मुकामों की बदइन्तज़ामी का हाल सुनकर वह बेवक़ूफ़ राजभक्ति की राह से भटक गया और उसने मुझको क़ैद कर लिया।

यद्यपि मैं अत्यन्त परीशान और रंजीदा था, तथापि मुझको सदैव यही फ़िक्र लगी रहती थी कि किस तरह इस दग़ाबाज़ की कैद से छूटूँ। राव गुलाबसिंह सरकार का एक खैरख्वाह और अमीर ताल्लुक़ेदार गूजर था। वह वलीदाद खाँ का भी दोस्त था। मैंने उसको लिख भेजा कि कृपा कर आप मुझको वलीदादखाँ के पास से अपने पास बुला लें। राव साहब ने कृपापूर्वक

अपने मन्त्री को उसके पास इस कार्य के लिये भेजा; परन्तु उसने मंज़ूर न किया।

इसके पश्चात् मैंने एक और मित्र को आगरा में लिखा कि तुम बीस सिपाही नौकर रखकर बालागढ़ आओ और मुझको छिपे-छिपे क़ैद से छुड़ा ले जाओ; परन्तु उनके पास न तो रुपया ही था और न वे सिपाही ही इकट्ठा कर सके। इस कारण वे कुछ भी मदद न दे सके।

अब हमें कोई आशा न थी; केवल ईश्वर पर भरोसा था। यह धारणा थी कि जिसने अब तक जान बचाई है, वह अब भी रक्षा करेगा।

२९ जुलाई को गोरा फ़ौज के थोड़े-से सिपाही आए और उन्होंने उपद्रवकारियों की फ़ौज को हापुड़ में हराया। इस हार से किले के लोग बहुत ही डर गये और उनके होश-हवास उड़ गए। मैं ३० तारीख की सुबह को क़ैदख़ाने से निकल कर बुलन्दशहर भाग गया।

इसके थोड़े दिन पीछे लपट साहब ने (जिनसे मेरी पहले भी मुलाकात हो चुकी थी) मेरे भागने का हाल सुनकर डनलाप साहब के साथ मीठी शब्दावली से परिपूर्ण एक चिट्ठी लिखकर रवाना की और विलसन साहब के रिसाले के थोड़े-से सवार मेरे लेने के लिये रवाना किये।

मेरठ में विलियम साहब ने मुझ पर बड़ी कृपा की थी और बड़ी खातिर की। साहब बहुत ही अच्छे और उदार अफ़सर हैं।

साहब की आज्ञा के अनुसार मैंने बालागढ़ के क़िले का नक़शा और उपद्रवकारियों के हाल लिखकर दे दिये।'

दसवीं कहानी

एक मेम साहब, जो सिकन्दर साहब के खानदान से हिन्दुस्तानी पोशाक पहनकर मेरठ चली गई थीं, दिल्ली के उपद्रव का हाल इस प्रकार बयान करती हैं —

'दरियागंज में जितने भी ईसाई थे, वे सब-के-सब उपद्रव वाले दिन एक कोठे पर जमा हुए और तीन चार दिनों तक वहीं रहे। जब सिपाहियों ने देखा कि बन्दूक के ज़ोर से वे उस स्थान से नीचे न उतरेंगे, तो वे एक नौपती तोप लाये। उसके एक गोले ने सब कन्डक्टर स्टल साहब का काम तमाम कर दिया। जब तक ये लोग कोठे पर रहे, खाने-पीने की कोई चीज उनके पास नहीं पहुँची। छोटे-छोटे बच्चे भूख प्यास से बिलख रहे थे। इन जल्लादों ने उन बच्चों से कहा कि यदि तुम नीचे उतर आओ, तो हम तुमको खाना पानी देंगे; परन्तु जब वे नीचे उतरे, तो उन्होंने उनके क़त्ल का संकेत किया और सब नन्हें बच्चों को क़त्ल कर डाला। फिर थोड़ी देर के बाद उन्होंने क़त्ल-आम की आज्ञा दे दी। इस उपद्रव में जो लोग क़त्ल हुए, उनमें से थोड़ों के नाम इस प्रकार हैं—मैगजीन के तीन कन्डक्टर और उनके बाल-बच्चे, मिसेज़ प्राइस साहब और उनके बाल-बच्चे और दो नवासे, मिसेज़ रेली और उनके दो बच्चे, आयूस साहब की मेम इत्यादि।'

ग्यारहवीं कहानी

रोड साहब चित्रकार अपने भागने और ६ सप्ताह के सफर का हाल, जिस बीच में वे दिल्ली से आगरा पहुँचे थे, इस प्रकार बयान करते हैं—

'मैं जी० लाल साहब रेलवे इंजीनियर और एच० स्पेनसर साहब और कमिंग साहब, रेलवे इंजीनियर के बँगले पर रहता था। ये अत्यन्त उदार व्यक्ति हैं। उनका बँगला दिल्ली से दो मील दक्षिण की ओर है।

सवेरे नौ बजे के लगभग हमने उपद्रव का समाचार पाया। दस बजे दो घुड़-सवार बिना घोड़ों के हमारे दरवाज़े पर आये, ठीक १२ बजे उन्होंने घर लूटा। पाँच अंगरेज़ वहाँ पर मारे गये। शहर और छावनी के तमाम बँगले उस रोज़ दिन-भर जलते रहे। जिस दिन हमने शहर छोड़ा, उस दिन २ बजे के लगभग बड़े ही भयप्रद समाचार आये। हमने रक्षा को ही बहादुरी की अन्तिम सीढ़ी समझकर थोड़ा-सा ज़रूरी सामान इकट्ठा किया और बाबू को आज्ञा दी कि नौकरों को सामान के साथ रवाना कर दें। इसके पश्चात् हम लोग भी रवाना हो गये और धीरे-धीरे पक्की सड़क के किनारे-किनारे चले। हुमायूँ के मक़बरे में १५० सवार भागने वालों की गिरफ्तारी के

लिये मौजूद थे। उनसे बचकर हम आगे बढ़े। वहाँ पर हजारों मजूर काम कर रहे थे, इस कारण उपद्रवकारियों ने हमको नहीं पहचाना। जब हम बटलर साहब के बँगले पर पहुँचे, तो ज्ञात हुआ कि साहब अभी थोड़ी देर हुई चले गये। कुछ देर हम उस बँगले पर ठहरे। वहीं हमने मैगज़ीन का उड़ना देखा। उसके बाद हम बँगले से रवाना हुए और चार मील पर बटलर साहब को जा मिले। वहाँ एक बँगला था, उसमें उतरे, खाना खाया और फिर रवाना होकर फ़रीदाबाद, जो यहाँ से ६ मील पर है, पहुँच गये।

हम यहाँ पर ठहरे। चाय पी और बहुत ही चौकन्ने रहे। आधी रात के लगभग बल्लमगढ़ का राजा हमारे पास आया और कहा कि ५० सवार तुमको ढूँढ़ने आरहे हैं, ज्यादा अच्छा हो, यदि तुम अपने नौकरों की पोशाकें पहन लो और जल्दी मेरे क़िले में आ जाओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यह कहकर वह अपने क़िले में गया, जिसमें वहाँ पर कोई उपद्रव न उठ खड़ा हो। राजा ने बल्लमगढ़ पहुँचकर एक सवार भेजा कि वह हमको ले जाय। हम क़िले में पहुँचे। राजा साहब ने हमको एक मकान में छिपा रखा। हम वहाँ पहुँचे ही थे कि वह ५० सवार भी आगये; परन्तु उनसे राजा साहब के नौकरों ने कहा कि साहब लोग आगे बढ़ गए। वह तो यह सुनकर आगे बढ़ गये और हम एक नींद ले कर दूसरे गांव को ओर रवाना हुए, जो बल्लमगढ़ से ६ मील की दूरी पर था। हमारी रक्षा के लिये राजा की फौज का एक रिसाला हमारे साथ था। इस गाँव में पाँच दिन तक एक छोटे-से मकान के कोठे पर रहे। पाँच रोज के बाद वहाँसे भी राजा साहब के विश्वास-

पात्र के साथ मथुरा के लिये रवाना होगए। रास्ते में हर गाँव से बचते चले। यहाँ तक कि एक गाँव में पहुँचे, जिसका नाम अरवान था। ऊँट हाँकनेवाला सीधा हमको वहीं ले गया; परन्तु अकस्मात् रास्ता एक बैलगाड़ी के कारण रुका हुआ था। इस कारण हम उस रास्ते से वापस आये। चार ऊँट तो वापस आये; परन्तु एक, जिस पर बेन साहब थे, पीछे रह गया। हम गाँव के बाहर ठहर कर उनकी राह देखते रहे और गाँव वाले हमारे आगे-पीछे हथियार बन्द खड़े थे। इतने में बन्दूक की दो आवाज़ें आईं। आवाज़ें सुनते ही सब वहाँ से भागे। पहला ऊँट, जिस पर लोल साहब सवार थे, वह तो अच्छी तरह बाहर निकल गया। दूसरा, जिस पर स्पेनसर साहब थे, गिर पड़ा और उठ कर भाग गया। हमारा ऊँट भी ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर उठ न सका। जो कोई उसके निकट जाता था, वह उसे काटने दौड़ता था। लाचार होकर उसको वहीं छोड़ा। स्पेन्सर साहब और कमिंग साहब तो रास्ता छोड़ कर भागे और बटलर साहब रास्ते पर भागते रहे। उपद्रवकारियों ने हमको दूर से मारना शुरू किया। अब सवेरा होने वाला था; इसलिए हमने उपद्रवकारियों का मुक़ाबिला करने की ठानी। उन्होंने जब हमको घेर लिया, तो बटलर साहब ने सन्धि कर ली। उपद्रवकारियों ने कहा कि यदि तुम अपनी बन्दूकें दे दो तो हम तुमको कष्ट नहीं देंगे। इस वादे पर हमने अपनी बन्दूकें उनको सौंप दीं; परन्तु इसी बीच उनमें से एक ने मेरे कन्धे पर ज़ोर से लकड़ी मारी। मैंने भी लौट कर अपनी राइफल का कुन्दा उसके जड़ दिया। जब हम अपनी बन्दूकें देकर गाँव को वापस आ रहे थे, उस समय बटलर

साहब ने अपना पिस्तौल उस आदमी से छीन कर, जिसको उन्होंने दिया था, वापस रास्ते की राह ली। इसी बीच में एक व्यक्ति ने मेरे सिर पर तलवार का वार किया। मैंने कहा—जो कुछ मेरे पास है ले लो। मेरे पास १५०) थे, वह मैंने उनको दे दिये। उसके बाँटने में उन में आपस में तकरार होने लगी। मैंने जो पीछे मुड़ कर देखा, तो बटलर साहब नौ दो ग्यारह हो गये थे। और कोई भी उनका पीछा नहीं कर रहा था। इतने में एक मनुष्य दौड़ कर आया और बड़े जोर से तलवार मेरे सिर पर मारी, जिसके कारण मैं ज़मीन पर गिर पड़ा; परन्तु तलवार कुन्द थी; इस कारण कोई ज़ख़्म न आया। मैंने जमीन पर गिर कर साँस रोक ली और औंधे मुँह छाती के बल पड़ा रहा, जिससे वे समझे कि मैं मर गया। उन लोगों ने मेरे कपड़े, जूते, सिगरेट बक्स आदि सब कुछ उतार लिया और आपस में तकरार करने लगे। सिगरेट-बक्स में ३) थे। एक ने कहा कि यह मैं लूँगा। असबाब बाँट लेने के बाद वे मेरे इर्द-गिर्द खड़े होगये और थोड़ी देर तक वह गीत (मरसिया) गाते रहे, जो मुर्दे के बारे में गाया जाता है। वे कभी-कभी मुझको लात भी मार देते थे। एक ने इस विचार से कि देखें यह ज़िन्दा है या मरा, मेरी गरदन पर पाँव रखा और उठाकर जमीन पर पटक मारा; परन्तु मैंने भी ऐसी सांस साधी कि उनको न मालूम हो सका कि मैं ज़िन्दा हूँ। मैंने अपना सारा शरीर पत्थर की तरह कड़ा कर लिया। एक आदमी ने फिर मेरी गर-दन के नीचे पैर डाल कर मुझको सीधा कर दिया और मेरी छाती पर हाथ रखा। उस समय मैंने सांस लेना बिल्कुल बन्द कर

दिया और जब उसका हाथ मेरे दिल पर आया, मैंने साँस नहीं ली। इसके बाद शोर हुआ; परन्तु मैं उसका मतलब बिल्कुल न समझ सका। थोड़ी देर के बाद एक आँख जो मैंने चुपके से खोली, तो मुझे कोई भी न दीख पड़ा। उस समय मैं उठा; परन्तु बहुत-सा खून निकल जाने के कारण मैं इतना शक्ति-हीन हो गया था कि मुश्किल से चल सकता था। परन्तु, लाचार होकर गिरता-पड़ता भागा ही था कि हथियारबन्द सिपाहियों का एक गिरोह दीख पड़ा। वे आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने संकेत से कहा कि यहाँ से चले जाओ। उनमें से एक व्यक्ति मेरे पास आया और मेरी विनय और इच्छा के अनुसार मुझको एक कूए पर ले गया। वहाँ मैंने पानी पिया। उस आदमी ने मुझ को एक सीधा और साफ़ रास्ता बताया, जिसमें झाड़-झंखाड़ और काँटे इत्यादि कुछ न थे; क्योंकि मेरे पाँव में जूते न थे और नंगे पैर चलना मुश्किल था। रास्ता बताकर वह खुद मेरे साथ चला। और कहा कि खून से लथ-पथ अपने कपड़े मुझको दे दो, मैं इनको धो लाऊँ। इस बहाने से उसने मेरी वेस्टकोट, जिसमें बहुमूल्य बटन और सोने की जंजीर लगी थी, उतरवा ली और चाहा कि मुझे मारे; परन्तु मैंने उसको भली-भाँति समझा दिया कि मैं विलायत का मनुष्य हूँ। मैंने उसको पृथ्वी पर दे पटका और आगे बढ़ा; परन्तु धूप की तेज़ी के कारण मुझ में ताकत न थी। मैंने कमीज हिन्दुस्तानी कपड़ों के नीचे से निकाल कर अपने सिर पर रखी और इस प्रकार दो या तीन मील चला हूँगा कि दो-तीन मनुष्य लट्ठ लिए हुए मेरे पास आये और मुझे धमकाने लगे। मैंने उनसे स्पष्ट

रूप से कह दिया कि यदि तुम मुझको मार डालोगे, तो भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा ; क्योंकि कि मेरे पास कुछ नहीं है ; परन्तु, यदि तुम मुझको बल्लमगढ़ पहुँचा दोगे, तो १००) मिलेंगे। और यदि आगरा पहुँचा दोगे, तो ३००) दूँगा। यह सुन कर उन लोगों ने थोड़ा-सा पानी पिलाया और छोड़ दिया। इसके पश्चात् एक अत्यन्त भयानक मनुष्य खेतों से दौड़ता हुआ और हल्ला मचाता हुआ मेरी तरफ आया। मैं उसको देखकर खड़ा हो गया। उसने मेरे सिर से कमीज़ उतार ली और मारने को ही था कि मैंने हाथ उठाकर कहा कि मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। हाँ, मैं बल्लमगढ़ तक के १००) और आगरे तक के ३००) दे सकता हूँ ; परन्तु उसको इस बात पर विश्वास न हुआ कि बल्लमगढ़ का राजा हमारा मित्र है। इसी बीच में और गाँववाले भी आये। उन लोगों ने कहा कि दो अंग्रेज़ एक दूसरे गाँव में, जो यहाँ से निकट ही है, आये हैं। उन मनुष्यों ने मुझे पानी पिलाया और उस गाँव में पहुँचा दिया। वहाँ स्पेन्सर साहब और कमिंग साहब मौजूद थे और ईश्वर की ऐसी कृपा थी कि रास्ते में उनको कोई उपद्रवकारी भी नहीं मिला था। उन दोनों साहबों से मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। स्पेन्सर साहब ने कृपापूर्वक मेरे ज़ख्म धोये। दोनों साहबों ने गाँव के नम्बरदार से कहा कि यदि तुम हमें आगरे पहुँचा दोगे, तो प्रति मनुष्य ५००) देंगे। बहुत-कुछ कहने-सुनने के बाद भी नम्बरदार ने इन्कार कर दिया और उसने उनकी बन्दूकें और ३००) छीन लिये। उसी समय हमारे पास माइकेल साहब की एक चिट्ठी पहुँची। उन्होंने हमें बुलाया था और लिखा था कि पत्रवाहक के साथ चले

आओ ; क्योंकि यह गाँव राजभक्त है। पूछने पर मालूम हुआ कि वह गाँव यहाँ से दो कोस पर है। वहाँ से रवाना होकर हम माइकेल साहबके पास पहुँचे। वहाँ सब लोग सायंकाल तक ठहरे। हमारे पथ-प्रदर्शक ने हमको यह सलाह दी कि यहाँ से एक दूसरे गाँव को, जो ६ मील की दूरी पर है, चलना चाहिये ; क्योंकि वह गाँव बड़ा है और उसके निवासी अच्छी तरह हमारी रक्षा कर सकते हैं। हम उसके कहने के अनुसार दूसरे गाँव में चले गये और वहाँ ९ दिनों तक रहे। यद्यपि इस बीच में मेवा-तियों ने उस गाँव वालों को बहुत कुछ डराया-धमकाया कि हम तुम्हारे गाँव पर आक्रमण करेंगे ; परन्तु उन लोगों ने इस बात की कुछ भी परवाह न की। उस समय हम सब को विश्वास हो गया कि यदि हम उस छोटे गाँव में रहते, तो सब-के-सब क़त्ल कर दिये जाते। इसके पश्चात हमें और ज्यादा इत्मीनान हुआ कि फ़ार्ड साहब मैजिस्ट्रेट गुड़गाँव ने हाड़ल नामक स्थान से भरत-पुर की फौज का अगला भाग हमारी रक्षा के लिये भेजा है। हम साहब के पास पहुँच गए और उनके पास हम बड़े चैन से रहे। हम वहाँ पर बहुत दिनों तक ठहरे। दिल्ली-विजय का समाचार सुनने के लिये हम बड़े ही उत्सुक थे। इसी बीच में मथुरा में भी उपद्रव आरम्भ हो गया। जो सिपाही हमारे साथ थे, उन्होंने भी उपद्रवकारियों का साथ दिया। हमसे कहा कि यहाँ से चले जाओ। इसके पश्चात् हम डार्डी साहब के साथ अत्यन्त आराम के साथ हाड़ल से २६ जून को आगरे चले गये।

माइकेल साहब ने हाड़ल से रवाना होने के पहले राजा

बल्लमगढ़ से २००) नगद और सवारी के लिये घोड़े लिये थे। मगर सवारों के हिसाब से एक घोड़ा कम था। फिर भी राजा साहब ने कृपा की। (इस राजा को दिल्ली-विजय के पश्चात् फाँसी दी गई थी।)

बारहवीं कहानी

१९ वीं अगस्त को मेसन साहब की मेम साहब दिल्ली के फ़ौजी कैम्प में स्वात निवासी एक ग़ाज़ी के साथ आई। यद्यपि शहर से दो ग़ाज़ी उनके साथ चले थे; परन्तु एक को उपद्रवकारियों ने बन्दी कर लिया था। मेम साहब अफ़ग़ान लड़कों का वेष बनाकर भागी थीं। मेम साहब दिल्ली में उपद्रव के आरम्भ अर्थात—११ मई से १९ अगस्त तक ३ महीने बन्दीगृह में रही थीं। उनका एक बच्चा उनकी गोद में गोली से मारा गया था और वही गोली मेम साहब को भी लगी थी। ज़ख्मी होने के पश्चात् उक्त दोनों ग़ाज़ियों ने उनकी रक्षा भी की थी।

फ़ौजी कैम्प में आने से पहले एक रात्रि में मेम साहब किसी तरह अजमेरी दरवाज़े से बाहर निकल कर घास में छिप रहीं। सवेरे उन्होंने ग़ाज़ियों में से एक को भेजा कि जाकर देखे कि अंगरेज़ी फ़ौज सब्ज़ीमन्डी में है कि नहीं। वह देखकर गया और सारा हाल बयान किया। मेम साहब यह सब हाल सुनकर वहाँ से रवाना हुई और जितना भी तेज़ चल सकीं, चलकर कैम्प में आ गई। रास्ते में वैरियों ने एक ग़ाज़ी को गोली से मार डाला। उन्होंने दूसरे गाज़ी और मेम साहब का भी पीछा किया; परन्तु जब वह हमारी गोली के निशाने पर पहुँचे तो उपद्रव-

कारियों ने एक पग भी आगे न बढ़ाया और गाज़ी व मेम साहब ने कुशल-पूर्वक सब्ज़ीमंडी पहुँच कर ईश्वर को अनेकों धन्यवाद दिये ।

मेमसाहब की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । हमारे बहुत से सिपाही उनका हाल देखकर बहुत रोए । उनके कूलेपर ज़ख्म था और उनका अगूंठा बिल्कुल घिस गया था ; क्योंकि बन्दीगृह में उनके अगूंठे को कसकर एक जगह बाँध दिया गया था । हमारे सिपाहियों ने उनकी ख़ातिर की । कोई पानी लाया, कोई शराब, कोई रोटी लाया और कोई मांस ; परन्तु मेम साहब ने कमज़ोरी के कारण न कुछ खाया और न पिया । थोड़ी देर तक वे उनके ईर्द-गिर्द जमा रहे और भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न करते रहे । यहाँ तक कि मेम साहब दिक हो गईं ; परन्तु मेम साहब ने सब सवालों का संक्षिप्त उत्तर दे दिया । अन्त में कप्तान हेली साहब आगये और उन्होंने मेम साहब को एक डोली मगँवाकर उसमें सवार किया और उनको अत्यन्त सुरक्षित अवस्था में कैम्प में भेज दिया । वहाँ उनको एक पृथक् ख़ेमा दिया गया और सारी आवश्यक वस्तुएँ वहाँ एकत्र कर दी गईं । शहर से भागते समय उनके पास एक पुराना मैला कपड़ा था, जिसे उन्होंने अपने शरीर में लपेट लिया था । एक टुकड़ा और था जो उनके सिर पर लिपटा हुआ था । न हाथों में दस्ताने थे और न पाँव में जूती ; केवल एक फटी-पुरानी हिन्दोस्तानी जूती थी । सच तो यह है कि मेम साहब की दशा इससे ज्यादा खराब नहीं हो सकती थी ।

तेरहवीं कहानी

जेम्स मोरली साहब, जिनकी जीवन-रक्षा एक हिन्दोस्तानी नौकर द्वारा हुई थी, अपने भागने का हाल इस प्रकार बयान करते हैं—

'मैं और मेरे मित्र विलियम क्लार्क साहब एक दुमंज़िले मकान में, जो काश्मीरी दरवाज़े नामक मुहल्ले में था, रहते थे। हम दोनों की शादी भी होगई थी और तीन बच्चे भी थे। क्लार्क साहब के भी एक बच्चा था और उनकी स्त्री गर्भिणी थी।

११ मई को सवेरे ८ बजे के लगभग मैं दफ़्तर जाने के लिये तैयार था कि बाज़ार में एक शोर हुआ। इसी बीच में मेरा नौकर आया और उसने कहा कि थोड़ी रेजिमेन्ट अपने अंगरेज़ अफ़सरों का क़त्ल करके मेरठ से यहाँ शहर में आगई है। हमारी समझ में कुछ भी न आया कि अब क्या करना चाहिये। बग्घी भी वापस करदी। हम दो-तीन घण्टे मकान पर और ठहरे रहे कि इतने में एक और नौकर ने आकर कहा कि बदमाश लोग जमा होकर अंगरेज़ों को कत्ल कर रहे हैं।

यह सुनकर मेरी पत्नी तथा बच्चों ने रोना-धोना आरम्भ किया। कुछ नौकर दरवाज़े पर जाकर खड़े हुए और उनमें से एक ने कहा कि चलो मेरे मकान में चल कर छिप रहो। मगर

मेरा विचार था कि मैं बाहर जाकर देखूँ कि क्या हो रहा है। मैं एक सोटा हाथ में लेकर गली में गया, वहाँ कोई दिखाई न पड़ा। मैं और आगे बढ़ा। वहाँ भी कोई न था। अन्त में इस गली को पार करके हम दूसरे मुहल्ले में गये। उसमें भी कोई आदमी न था; केवल एक बूढा आदमी दूकान पर बैठा था। मैं थोड़ी देर वहाँ ठहरा, तो सीधे हाथ की ओर मनुष्यों का एक समूह दिखाई दिया। वह मुझसे दूर था और कोलाहल के अतिरिक्त और कुछ समझ में न आता था। मैं इस विचार से कि वे मेरे ही मकान पर आवेंगे, वहीं थोड़ी देर तक खड़ा रहा और उनको देखता रहा। उसके बाद एक हल्ला पीछे से सुनाई दिया। मुड़कर देखा, तो एक समूह मेरे दरवाज़े के भीतर जा रहा था और मुझको देखकर उन्होंने कुछ आदमियों को मेरी ओर भेजा। यह देखकर मैं तुरन्त ही बाईं ओर जो एक दूसरा रास्ता जाता था, वहीं घुस गया। यहाँ से एक रास्ता बहुत फेर से मेरे मकान की ओर भी जाता था। इस दरवाज़े पर कुछ औरतें और एक या दो आदमी खड़े थे; मगर उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा। मैं वहाँ से भी आगे भागा। अधिक दूर न गया था कि दो आदमी एक और गली से भागते हुए निकले और मेरी ओर यह कहते हुए आये कि मारो फिरंगी को। इनमें से एक के हाथ में तलवार थी, दूसरे के पास लाठी। जब वह निकट आये, तो मैं भी ठहरा और तलवार वाले को मैंने एक ऐसा सोंटा सिर पर मारा कि वह ज़मीन पर गिर गया। इस बीच लोग वहाँ जमा होने लगे और मैं वहाँ से भी रवाना होकर एक व्यापारी की दूकान पर पहुँचा। वहाँ बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी थीं और एक गाड़ी की छत टूटी हुई ज़मीन पर पड़ी थी।

इसमें मेरे लिये काफी जगह थी, मैं इसमें घुसकर बैठ गया। इस अन्तर में चार-पाँच आदमियों को यह कहते हुए सुना कि 'इधर ही को गया है।' मैं मारे डरके ज़रा भी आराम से न बैठ सका। इनके जाने के थोड़ी देर बाद फिर वहाँ कोई न था और न उधर से कोई आदमी ही निकला।

अब मुझे अपने और क्लार्क साहब के बीबी-बच्चों का ध्यान आया। मैं अपने मन में सोचता था कि क्या वे सब मारे गए। यह ध्यान आते ही मैंने अपने मन में कहा कि जो कुछ हो, मुझे घर न जाना चाहिये। इस विचार ने मुझे पागल बना दिया। अभी इन्हीं भ्रान्तियों में घिरा हुआ था कि दुबारा इसी रास्ते में एक ज़ोर का कोलाहल उठा और एक बड़ा भारी समूह दुन्द मचाता और अंगरेज़ों को गालियाँ देता उधर से निकला। इसी बीच दो-तीन औरतें घरों से निकलकर उस छत के पास आ खड़ी हुईं। उनकी गोद में एक बच्चा भी था। बच्चा उसके नीचे (छत का) झाँकने लगा कि किसी ने कोठे से पुकारा कि भीतर आके दरवाज़ा बन्द कर लो। मैं वहाँ बहुत देर तक छिपा रहा; क्योंकि यह बाज़ार बहुत चलता था। मैंने सोचा कि इसमें हर जगह आदमी मिलेंगे; मगर दुबारा मुझे अपनी बीबी-बच्चों का ध्यान आया और मैंने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, मुझे घर अवश्य जाना चाहिये। परिणाम यह हुआ कि मैं बाहर आया और अभी निकला ही था कि एक औरत ने कहा कौन है ? मैंने कुछ उत्तर न दिया और वहाँ से चल दिया। यह गली बीच शहर में स्थित न थी; बल्कि शहर के प्राचीर के निकटतर थी। इसमें बनिये-बक्काल न रहते थे; बल्कि बंगाली

रहते थे। जितने भी बदमाश थे, वे सब शहर लूटने गये थे। मुझे इस रास्ते में केवल दो आदमी मिले, वे मुझे जानते थे। उन्होंने कहा कि अपने को बचाओ। सारांश यह कि मैं अपने मकान के पिछवाड़े तक पहुँच गया। यहाँ एक बाग़ था, मैं एक खिड़की से होकर भीतर गया। उस समय चार बजे थे। मैंने बन्दूकों की आवाज़ें सुनी थीं और साथ ही एक बहुत ज़ोर का धमाका और भूचाल-सा भी आया जो बाद में मालूम हुआ कि मेगज़ीन उड़ाया गया था।

वीभत्स मर्मस्पर्शी दृश्य

अन्त में मैं अपने बाग़ के भीतर आया, तो सन्नाटा-सा छाया हुआ था। मकान के निकट पहुँचा तो कुर्सियाँ और पुस्तकें टूटी-फूटी अस्त-व्यस्त दशा में फैली हुई थीं। कपड़ों के ढेर जल रहे थे, जिधर नौकर रहते थे उधर गया; मगर वहाँ कोई आदमी दिखाई न दिया। पशु-गृह की ओर कुछ रोने का-सा शब्द सुनाई दिया। वहाँ जाकर देखा कि हमारा पुराना धोबी, जिसने बीस बरस तक मेरे पिता की सेवा की थी, पड़ा है। मैंने उसका नाम लेकर पुकारा, तो उसने आँखें खोलीं और मुझको देख कर रो-रो कर कहने लगा कि साहब उन्होंने सबको मार डाला। यह सुनते ही मेरी संज्ञा लुप्त-सी हो गई। मैं अचेत-सा होकर बैठ गया। धोबी से मैंने पानी माँगा। उसने अपने घर से लाकर दिया। पानी पीने के पश्चात् मैंने उससे पूछा कि क्या हुआ और क्योंकर हुआ। पहले तो वह खूब रोया, फिर कहा कि साहब जब तुम चले गये, तो दोनों मेम साहब और बच्चे

एक स्थान में भय के मारे बैठ गये ; क्योंकि गली-कूचों में बहुत कोलाहल हो रहा था और बन्दूकों की आवाज़ें भी आती थीं। यह दशा देखकर क्लार्क साहब ने अपनी शिकारी बन्दूक निकाली और उसे भरा। मैंने उनसे कहा कि अगर आप कहें, तो दरवाज़ा बन्द कर लूँ ; मगर उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं, हमको कुछ भय नहीं है। इसके बाद एक बड़ा भारी झुंड लाठियाँ, तलवारें और बरछियाँ लिये हुए अहाते के भीतर आगया। क्लार्क साहब ज़ीने पर खड़े थे। उन्होंने उनसे पूछा कि तुम क्यों आये हो और क्या चाहते हो ? उन लोगों ने गालियाँ देने के अतिरिक्त और कुछ उत्तर न दिया और कहा कि हम प्रत्येक फ़िरंगी को मारेंगे। साहब यह सुन कर भीतर चले गये और दरवाज़ा न बन्द किया। इनके पीछे वे सब लोग भी अन्दर घुस आये। नौकर सब भाग गये। अकेले मैं रह गया। जब वे सब अन्दर आ गये, तो क्लार्क साहब ने कहा कि ये सब चीजें मौजूद हैं, इन्हें ले जाओ, हमको न मारो ; लेकिन उन्होंने साहब को गाली देकर और उनकी मेम की तरफ़ देख कर कहा क्या यह तुम्हारी मेम है ? यह कह कर खूब हँसे और अब उन्होंने सब असबाब को तोड़ना-फोड़ना और लूटना प्रारम्भ कर दिया। हमारी मेम साहब ने तीनों बच्चों को लेकर स्नानागार में जाकर दरवाजा बन्द कर लिया था। क्लार्क साहब मेरे पीछे बन्दूक लेकर खड़े हो गये। उन लोगों ने बन्दूक देखी, तो कहा कि यह हमको देदो। उनमें से एक व्यक्ति मेम साहब के पास गया और उनके गालों को छू कर कुत्सित बातें कहने लगा। क्लार्क साहब यह देख कर चिल्लाये और कहा कि 'ओ !

सूअर' और उसको गोली से मार दिया। दूसरे को दूसरी गोली से घायल करके बन्दूक की नाल से मारने लगे। यह देख कर मैंने समझा कि अब ये लोग सब को मार डालेंगे। मैं भाग कर स्नानागार की ओर गया कि मेम साहब को निकाल ले जाऊँ; किन्तु वहाँ भी बहुत से लोग जमा थे। उन्होंने मुझे मारा और कहा कि यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो हम तुमको मार डालेंगे। मैं विवश होकर बाग में एक वृक्ष की आड़ में जा बैठा। वहाँ से मैंने पहले तो बड़ा भारी शोर-गुल सुना, उसके बाद देखा कि वे लोग सब मालमता निकाल-निकाल कर चारों ओर फेंक रहे हैं। उन लोगों ने दरवाज़ों के शीशे भी तोड़ डाले और फिर वे सब चले गये।

यह सुनकर थोड़ी देर तक तो मैं संज्ञा-विहीन-सा हो गया। फिर मैंने उठकर धोबी से कहा कि चलो भीतर चलें। मकान में जाकर बाहर के कमरे में देखा कि अनेक वस्तुएँ टूटी पड़ी हैं। मेज़ें कुल्हाड़ियों से तोड़ी गई थीं और सब वस्तुएँ फ़र्श पर बिखरी पड़ी थीं। मुरब्बे और अचार के ढेर लगे थे, बिस्कुट सर्वत्र फैले थे और ब्राण्डी इत्यादि शराब की बोतलें टूटी हुई पड़ी थीं। उनकी बदबू सर्वत्र फैल रही थी।

यह समस्त घटना मेरे हृदय पर अंकित है और ऐसे अवसरों पर प्रत्येक व्यक्ति के मन में जो-जो कुभावनाएँ और कुत्सित सन्देह उदय होने लगते हैं, वे ही भयप्रद शंकाएँ मेरे मन को भी कुरेद रही थीं। इसी सन्देह और भय से मैं देर तक इस कमरे में रहा और इधर-उधर देखता रहा। अन्त में धड़कते हुए हृदय को दृढ़ करके मैं दूसरे कमरे में गया। वहाँ जो कुछ दृष्टिगत हुआ, वास्तव

में उसे देखने के लिये अत्यन्त दृढ़ हृदय होना चाहिये। वहाँ प्रवेश करते ही मेरा हृदय अतीव भय और घृणा से भर गया। सामने जो दृष्टि गई, तो क्लार्क साहब का बेटा दीवाल पर एक मेख़ से लटका हुआ था। उसका सिर नीचे था और लहू के फव्वारे जारी थे। अफसोस! यह हृदय-विदारक अमानवीय अत्याचार उन्होंने माँ के सम्मुख किया होगा। वह भय या वह दृश्य देखकर मैंने अपनी आँखें बन्द करलीं। मेरा शरीर काँपने लगा। जब डरते-डरते दुबारा मैंने आँखें खोलीं, तो उससे अधिक घृणोत्पादक तथा रोमांचकारी दृश्य देखना पड़ा। क्लार्क साहब और उनकी मेम दोनों एकही पार्श्व में पड़े थे। और अब मैं यह वर्णन न करूँगा कि यह दृश्य कितना अधिक भयंकर और करुणोत्पादक था; क्योंकि यह मैं पहले ही बता चुका हूँ कि क्लार्क साहब की मेम गर्भवती थीं और अत्यन्त निकट ही में उनके सन्तान होने वाली थी। मैं चीखने की आवाज़ सुन कर तीसरे कमरे में गया और वहाँ देखा कि धोबी बिचारा हाथ मल-मल कर रो रहा है। वह स्नानागार के दरवाज़े पर खड़ा था। मैं दौड़कर स्नानागार तक गया; किन्तु अन्दर न जा सका; क्योंकि वहाँ वह दशा थी कि दुश्मन को भी देखना नसीब न हो। मैं तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि क्लार्क साहब की भाँति मैं अपनी पत्नी को भी देखूँ। मैं बदहवास होकर दोनों हाथ घुटनों पर रख कर बैठ गया। मुझे इस समय रोना भी न आता था। ऐसा प्रतीत होता था कि हृदय पर एक पहाड़ स्थित है, जो आँखों तक आँसुओं को नहीं आने देता। मुझे मालूम नहीं कि मैं कितनी देर तक वहाँ बैठा रहा। अन्त में धोबी ने आकर कहा

कि इधर आदमी आते-जाते हैं। अब यहाँ रहना उचित नहीं। वही पकड़ कर मुझे अपने घर ले गया। अब शाम हो गई थी और अँधेरा फैल गया था। ध्यान आया कि सम्भवतः नौकर लौट आये हों; किन्तु मुझे अब किसी पर विश्वास न रह गया था।

धोबी ने मुझसे कहा कि आज रात को मैं तुमको अपने भाई के यहाँ ले जाऊँगा, जो शहर के दूसरी ओर रहता है और कोई ऐसा उपाय निकालूँगा कि तुम भी किसी प्रकार शहर से बाहर निकल जाओ। हम और तुम करनाल चलेंगे। मैं उसके घर के भीतर जाकर लेट रहा और वह दरवाजे पर बैठा रहा। थोड़ी देर भी नहीं बीती थी कि बदमाशों का एक समूह अन्दर आया। वे लोग खूब ठठा कर हँसे, चीखे और चिल्लाये और फिर खिड़की से होकर बाहर चले गये। मैंने स्वयं सुना कि उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—क्या खूब तमाशा है!

मेरे नौकर भी वापस आगये थे और इस घटना की बातें आपस में करने लगे। मुझे इसकी बहुत प्रसन्नता हुई कि उन्होंने मुझको निहत व्यक्तियों में समझ लिया था। एक व्यक्ति ने कहा कि मेम साहब और बच्चों का रक्तपात अत्यन्त ही बुरा और हेय है। अब काम-धंधा कहाँ मिलेगा; किन्तु दूसरे ने तुरन्त ही उत्तर दिया कि वे लोग काफ़िर थे। अब दिल्ली का बादशाह हमारी परवरिश करेगा।

मैं आधी रात बीते अत्यन्त धीरे से बाग में गया और धोबिन की कुरती पहन कर ओढ़नी ओढ़कर बाहर निकला और नियत स्थान पर पहुँचकर धोबी से मिला। वह मुझे साथ लेकर अपने भाई के मकान पर गया। मार्ग में प्रत्येक स्थान पर खलबली

मची हुई थी। मेगज़ीन की ओर से एक तीव्र ज्वाला उठ रही थी और प्राचीर के बाहर बन्दूकें चल रही थीं। जब मैं धोबी के भाई के मकान के निकट पहुँचा, तो धोबी ने कहा कि तुम चुपचाप एक कोने में खड़े रहो। मैं भीतर जाकर देखूँ कि कौन-कौन हैं। यह बात मेरे भाग्य के लिये अच्छी सिद्ध हुई; क्योंकि बाद में मालूम हुआ कि धोबी का भाई हमारे क़त्ल से प्रसन्न हुआ कि अब सब कपड़े उसके पास रहेंगे। यदि मैं भीतर चला जाता, तो वह कदापि हमारे बचाने का प्रयत्न न करता; बल्कि वह तो हमारे क़त्ल पर उद्यत था। मैं इस कोने में बहुत देर तक खड़ा रहा। बहुत से आदमी उधर से निकलते थे। यदि उनको ज़रा भी ख़बर हो जाती कि एक फ़िरंगी उनके निकट मौजूद है, तो ईश्वर जाने क्या-क्या अपमान सहन करने पड़ते। मैं समस्त जीवन शहर में रहा हूँ। मुझको बहुधा लोग जानते थे; इसलिये भय था कि मेरे ओढ़नी पहनने के कुढंग से कोई मुझे पहचान न ले। इसी सोच-विचार में थोड़ी देर बैठा रहा। अब सुबह होने लगी और इस विचार से कि अब परदा खुल जायगा और भी अधिक आशंका हुई। अन्त में धोबी निकला। उसके आगे-आगे एक बैल कपड़ों से लदा हुआ जा रहा था; किन्तु वह मेरी ओर न आया, बल्कि सामने एक दूसरी गली में चला गया। यह देख कर मुझे दुःख हुआ कि देखो यह भी मुझे छोड़ चला! खैर, जो भाग्य में है वह होगा; परन्तु जब उसकी सेवा और ईमानदारी का ध्यान हुआ, तो हृदय ने कहा कि यह इस कारण मेरी ओर नहीं आया कि किसी को मेरे ऊपर सन्देह न हो। यहाँ तक कि धोबी दूर निकल गया। उस समय मैं उठा और उसके पीछे

हो लिया। वह आगे-आगे जाता था और मैं कुछ पीछे-पीछे जाता था। यहाँ तक कि हम उस गली से बाहर निकल आये, जिसमें उसका भाई रहता था। इसके बाद वह ठहर गया और संकेत से मुझे बुलाया। मैं उसके पास गया। उसने कहा कि मेरा भाई बेईमान है। वह कभी तुम को न बचाता और मैं इस बहाने से निकल आया हूँ कि ऐसे समय शहर में रहना उचित नहीं, जब कि चारों ओर शहर में उत्पात मच रहा है। मैं तो यहाँ नहीं रहूँगा और गाँव जाता हूँ ; अतः हम दोनों शहर के प्राचीर से बाहर निकल आये और किसी ने हमको न रोका। हम सड़क के मार्ग से तीन मील के लगभग गये होंगे कि धोबी ने सलाह दी कि अब करनाल जाना उचित है। करनाल का मार्ग वहाँ से दूर था और हमें समस्त शहर का चक्कर काटकर वहा पहुँचना था। अन्त में हम उसी ओर रवाना हुए। मार्ग में हमें बहुत-से आदमी मिले ; मगर कोई न बोला। हम धीरे-धीरे चल रहे थे और शाम होते-होते करनाल के मार्ग पर आ पहुँचे। यहाँ मामला कुछ और था। जो लोग करनाल जाते थे, उनकी तलाशी ले ली जाती थी। हम को उपद्रवकारियों ने घेर लिया और कहने लगे कि यह बूढ़ा आदमी बड़ा ही चतुर है, लूट का माल लिये जाता है। धोबी ने झट उनसे कहा कि मेरा बोझ देख लो। जब उन्होंने देख लिया और कुछ न पाया, तो हम लोगों को छोड़ दिया। अब मैंने धोबी से कहा कि आगे यदि कोई उपद्रवकारियों का झुंड मिले, तो पहले ही से कहना चाहिये कि जाओ फिरंगियों को लूटो और उक्त उपद्रव, सर्वनाश और रक्तपात की घटना का जिक्र हँसी-मजाक से करना चाहिये ;

अतः अब आगे उसने ऐसा ही किया, जिसके कारण फिर किसी ने हम पर सन्देह नहीं किया।

दूसरे दिन हम बहुत सवेरे अंधेरे ही से बैल पर सवार होकर चल पड़े। तीसरे दिन हम हिन्दुओं के एक मंदिर के निकट ठहरे और एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गये। वहाँ एक बड़ा तालाब था और एक संन्यासी वहाँ आकर ठहर गया। उसके बाद धोबी खाना लेने गया। चूँकि हवा ठण्ढी चल रही थी, मैं सो गया। जब धोबी खाना लेकर लौटा और मुझे जगाया तो उससे संन्यासी ने कहा कि मैं जानता हूँ कि यह फ़िरंगी है।

हमने उसकी बहुत अनुनय-विनय और प्रार्थना की और कहा कि हम पर दया करो। संन्यासी ने कहा कि जाओ, मैं किसी को दुःख नहीं देता।

अब मैं ज़नाने लिबास से तंग आ गया था और मुझे शर्म मालूम होती थी। मैंने इस विचार से कि अब तो दिल्ली से बहुत दूर निकल आये हैं, यहाँ कौन कष्ट देगा, धोबियों के मर्दाने वस्त्र पहन लिये। मार्ग में बहुधा गाँव वाले हमको गालियाँ और ताने देते थे ; किन्तु किसीने हमको शारीरिक कष्ट न दिया।

मार्ग में मैंने देखा कि एक शव कुचला हुआ पड़ा है और मैंने देखा कि एक गिद्ध बोलता हुआ उस शव की ओर उड़ा जा रहा है, तो मुझे असीम दुःख हुआ। मैं उस शव के पास गया, तो एक और नवयुवक अंग्रेज़ का शव उसके पास पड़ा हुआ था, जिसकी अवस्था सोलह वर्ष के लगभग प्रतीत होती थी। उसके देखने से मालूम होता था कि उसको लाठियों से मारा है। मैंने उसे वहीं दफ़न किया ; मगर क़ब्र नाममात्र की थी।

थोड़ी-सी बालू इधर-उधर से सरकाकर शव रख दिया और वही बालू फिर उस पर डालकर दबा दिया। शोक !

मार्ग में मैंने सुना कि कुछ अंग्रेज़ आगे जा रहे हैं, अतः मैंने प्रयत्न किया कि उनसे जा मिलूँ ; परन्तु उन तक न पहुँच सका। इस उपद्रव से पहले ही मेरी टाँग में दर्द था। अब जो गर्मी में पैदल ज़मीन पर चलना पड़ा, तो पीड़ा बढ़ गई ; बहुधा मुझसे चला न जाता था, तो मैं पाँव घसीट-घसीट कर रखता था ; किन्तु चलना आवश्यक था। यदि ऐसा अवसर न होता, तो मैं ऐसा कष्ट कभी भी सहन न करता ; परन्तु प्राणरक्षा का भाव इतना प्रबल होता है कि चाहे कैसी ही कष्टप्रद और दारुण स्थिति हो, मनुष्य उसके लिये सब कुछ झेल लेता है।

दिल्ली से चलने के छः दिन पश्चात् मैं करनाल पहुँचा। वहाँ मुझे आराम मिला। चूँकि अब प्राणों की चिन्ता व भय जाता रहा था मुझे कुछ होश आने लगा ; किन्तु जब इस चिन्ता से छुट्टी मिली, तो बुखार ने आ दबाया और नौबत सरसाम तक पहुँच गई ; किन्तु अब मुझे कुछ लाभ है।

१२ मई को एक फ़क़ीर मेरठ में आया। उसके साथ एक अंग्रेज़ का बच्चा था, जिसको उसने जमुना में से डूबते हुए ; निकाला था। मेरठ आने तक उस बेचारे पर उस बच्चे के कारण कई स्थानों पर मार पड़ी और नाना प्रकार के कष्ट दिये गये किन्तु उसने बच्चे को नहीं दिया। मेरठ में आकर जब अधिकारियों को सिपुर्द किया, तो वे इस सेवा और रक्षा के बदले में उसको एक सौ रुपये की नक़द रक़म देने लगे ; किन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया। परन्तु, यह प्रार्थना की कि एक कुआँ

उसके नाम से बनवा दिया जाय, जिससे उसका नाम अमर हो जाय। सारांश यह कि इस उपद्रव में अत्यन्त ही कठोर तथा क्रूर अत्याचार किये गये। बच्चे माँ के गर्भ से निकाले गये। नन्हे-नन्हे कोमल बच्चे तलवार और भालों की नोक पर उठाकर बाज़ारों में गर्वपूर्ण ढंग से फिराये गये, स्त्रियों को नंगा करके अत्यन्त घृणा तथा अपमानजनक रीति से क़त्ल किया गया और इन्हीं कारणों से ईश्वर ने उपद्रवकारियों को अपमानित तथा पराजित किया और अंग्रेजी शासन की पुनः स्थापना की।

इस 'माला' की अन्य पुस्तकें

१. बेगमों के आँसू

अनुवादक, श्री० मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, सम्पादक 'चाँद'

इस पुस्तक में भारत के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह के सिंहासनच्युत होने पर राजवंश की जो छीछा-लेदर हुई है; उसकी करुण कहानी अङ्कित है। बादशाह-सलामत की बेटियों, बहुओं तथा पुत्र-वधुओं को किस प्रकार गली-गली की ठोकरें खानी पड़ीं, इनमें से कुछ तो अभी हाल तक जीवित थीं और किस प्रकार सिसक-सिसक कर उन्हें परवशता के पहलू में दम तोड़ना पड़ा और किस प्रकार वे कुत्तों और बिल्लियों की मौतें मरी हैं, इस पुस्तक में इन्हीं करुणापूर्ण कहानियों का उल्लेख है। इस पुस्तक में पाठकों को शाहजादों की भी दर्दनाक कहानियाँ मिलेंगी, जिनमें कई को घसियारे एवं ठेला हाँकने वालों का दयनीय जीवन व्यतीत करना पड़ा है! उर्दू में इस पुस्तक के अब तक ९ संस्करण हो चुके हैं। मूल्य लगभग १॥) रु०

२. अफसरों की चिट्ठियाँ

अनुवादक, श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल-एल० बी०

इस पुस्तक में उन अलभ्य पत्रों का संग्रह है, जो अङ्गरेज अफ़सरों के बीच में आइ-गई थीं और जिनके द्वारा उस समय के हाकिमों की कमज़ोरियों का पता चलता है। इन चिट्ठियों द्वारा पाठकों को भी पता चलेगा, कि पञ्जाब के राजाओं के सामने किस प्रकार चारा डालकर उनसे सहायता प्राप्त की गई और यह भी पता चलेगा कि यदि देशी रियासतों के राजा उस समय सहायता न देते, तो अङ्गरेजों का विजयी होना एक बार

ही असम्भव था। उर्दू में इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं। मूल्य लगभग ॥)

भारत के अन्तिम सम्राट्

३. बहादुरशाह का मुक़दमा

अनुवादक, श्री० गोपीनाथसिंह, सदस्य लोक-सेवा-संघ

उनके पराजित एवं बन्दी हो जाने पर देहली के अन्तिम सम्राट् स्वर्गीय बहादुरशाह पर, उनके बागियों से मिलकर उपद्रव कराने का अभियोग चलाया गया था और परिणाम-स्वरूप उन्हें देश-निकाले का दण्ड दिया गया था। इस पुस्तक में उसी सनसनीदार मुकदमे के प्रत्येक दिन की कार्यवाही का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें अङ्गरेज, हिन्दू तथा मुसलमानों द्वारा दी गई मनोरञ्जक गवाहियाँ, उनके विस्तृत बयान, बहादुरशाह की उज्रदारियाँ, उनका सनसनीपूर्ण बयान आदि भी पाठकों को मिलेंगे। मूल्य लगभग २)

सन् ५७ के ग़दर सम्बन्धी

४. गुप्त चिट्ठियाँ

अनुवादक, श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल्-एल् बी०

इस पुस्तक में उन गुप्त चिट्ठियों का संग्रह है, जो देहली के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह और विप्लवकारियों के बीच आई-गई थीं और जिसे विप्लव के बाद अङ्गरेजों ने देहली के लाल क़िले में पकड़ा था। इन पत्रों के पढ़ने से ग़दर-सम्बन्धो बहुत से ऐसे गुप्त कारणों का पता चलता है, जिससे भारतवासी आज तक अनभिज्ञ हैं। मूल्य लगभग १॥)